CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

H
85

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी परिचय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी-परिचय

(सचित्र)

लेखक

पारसनाथ सिंह, बी. ए., एल-एल. बी.

प्रकाशक

नवयुग-साहित्य-मन्दिर

नया बाज़ार, दिल्ली

प्रथम बार २०००]   १९३३ ई०   [मूल्य १।)

प्रकाशक—
नवयुग-साहित्य-मन्दिर,
पोस्ट बक्स ७८,
दिल्ली
CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्रक—
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नया बाज़ार, दिल्ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

हिन्दी में पक्षी-सम्बन्धी साहित्य नहीं के बराबर है। आशा है यह संकलन इस विषय की प्रवेशिका का काम करेगा। ऐसे ग्रन्थ में भारतवर्ष के सभी पक्षियों का परिचय-प्रदान करना असम्भव था। इसमें प्रायः उन्हींके नाम आये हैं जो उत्तर भारत के किसी भी साधारण गाँव में आसानी से मिल सकते हैं। मनोरञ्जन के साथ पाठक-पाठिकाओं के ज्ञान और जिज्ञासा की वृद्धि हो, यही लेखक का उद्देश है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

598.2954

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चित्र-सूची

	चित्र	पृष्ठ
१.	कौआ (१) बड़ा (२) साधारण	१
२.	पपीहा	२५
३.	गौरैया	३०
४.	मैना	४९
५.	सतभइया	५७
६.	हुदहुद	६२
७.	तोता	८०
८.	बुलबुल	८८
९.	बसन्ता (१) छोटा (२) बड़ा	१०१
१०.	पतरिंगा (१) साधारण (२) नील पुच्छा	१०९
११.	बया	१२०
१२.	किलकिला	१३२
१३.	उल्लू	१३५
१४.	शिकरा	१५१
१५.	शाह बुलबुल (१) नर (२) मादा	१६४
१६.	मोर (१) नर (२) मादा	१८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

	विषय		पृष्ठ		विषय		पृष्ठ
१.	कौआ	...	१	२१.	नीलकंठ	...	९४
२.	कोयल	...	११	२२.	कठफोड़वा	...	९७
३.	भुजंगा	...	१८	२३.	बसन्ता	...	१०१
४.	महोखा	...	२३	२४.	लाल-मुनियाँ	...	१०५
५.	पपीहा	...	२५	२५.	पतरिंगा	...	१०९
६.	गौरैया	...	३०	२६.	शकरखोरा	...	११३
७.	पीलक	...	३४	२७.	बाबुना	...	११७
८.	धोबिन	...	३९	२८.	बया	...	१२०
९.	श्यामा	...	४३	२९.	दर्जी	...	१२६
१०.	दोयल	...	४५	३०.	अबाबील	...	१२९
११.	दामा	...	४७	३१.	किलकिला	...	१३२
१२.	मैना	...	४९	३२.	उल्लू	...	१३५
१३.	सतभइया	...	५७	३३.	चील	...	१४१
१४.	हुदहुद	...	६२	३४.	गीध	...	१४५
१५.	कबूतर	...	६९	३५.	बाज़	...	१४९
१६.	हारिल	...	७४	३६.	शिकरा	...	१५१
१७.	फ़ाख़्ता	...	७७	३७.	लहतोरा	...	१५४
१८.	तोता	...	८०	३८.	महलाठ	...	१५७
१९.	थिरथिरा	...	८५	३९.	मछरिया	...	१६१
२०.	बुलबुल	...	८८	४०.	शाह बुलबुल	...	१६४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

	विषय	पृष्ठ		विषय	पृष्ठ
४१.	चंडूल	··· १६७	४५.	टिटिहरी	··· १७७
४२.	तीतर	··· १७०	४६.	राजालाल	··· १७९
४३.	बटेर	··· १७३	४७.	बगला	··· १८२
४४.	बनमुर्गी	··· १७४	४८.	गाय-बगला	··· १८५

४९. मोर ··· १८८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी-परिचय—

कौआ

(१) बड़ा (२) साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौआ

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग, काग सब भये अपावन!
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मनके!
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुनके॥

कौए को कौन नहीं जानता, कौन नहीं पहचानता! किसी भी आबादी में जा देखिये, कौए ज़रूर मिलेंगे! गाँव से ये शहर को ज़्यादा पसन्द करते हैं। एक कलकत्ते में ही, सुनते हैं, दस लाख से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक कौए रहते हैं। ये वनवासी नहीं होते। जंगल में औरों के लिये मंगल हो सकता है, परन्तु कौओं के लिये नहीं। अनादि काल से यह धृष्ट पक्षी आदम के ही दरबार का टुकड़खोर चला आता है।

इसकी हुलिया देने की कोई ज़रूरत नहीं। इसकी शकल-सूरत जैसी होती है, आप सभी जानते हैं। चोंच लम्बी और कड़ी होती है। पैर बहुत मज़बूत। कुछ लोगों का ख़याल है कि इसके पुतली एकही होती है, जो आवश्यकतानुसार दोनों आँखों में घूमा करती है। और, जैसा रंग-रूप वैसी ही बोली। क्या किसी दूसरे पक्षी की भी इतनी कर्कश बोली होती है ?

कौआ किसी को अच्छा नहीं लगता। हमारे कवियों ने तो उसे खूब ही जली-कटी सुनाई है। रंग-रूप चाहे जो होता, पर गले में थोड़ी-सी भी मिठास होती, तो न तो तुलसीदासजी यह लिख जाते कि:—

बायस पालिय अति अनुरागा,
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा ?

और न बिहारीलालजी यह तीर छोड़ जाते कि:—

अरे हंस ! या नगर में जैयो आप बिचारि;
कागन सों जिन प्रीति करि, कोयल दई बिडारि !

पर कौआ इन बातों की कोई परवा नहीं करता। कोई कुछ कहे, कोई कुछ लिखे, उसे तो अपने काम-से-काम ! उसका तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्धान्त है कि "मान न मान, मैं तेरा मेहमान।" सचमुच उसकी ढिठाई की बलिहारी है।

आलस्य उसे छू तक नहीं गया। वह बाल ब्रह्मचारी तो नहीं, पर उसकी दिनचर्य्या पौ फटने से पहले ही आरम्भ हो जाती है। उस समय हममें से कितने ही तो बिस्तर पर पड़े ख़र्राटे भरते रहते हैं। कौए का काँव-काँव कान में पड़ने पर हमारी नींद टूटती है, और हमें ज्ञान होता है कि सवेरा हो गया। कौए अगर कविता कर सकते और उसे छपा सकते, तो आप देखते कि वे अपनी निन्दा का कैसा जवाब दे सकते हैं। उनसे शिक्षा ग्रहण कर हमें भी उन्हीं की भाँति आलस्यहीन होना चाहिये।

पक्षी, मनुष्य की तरह, संचय करना नहीं जानते। इसीलिये उनके यहाँ न तो कोई अमीर होता है, न कोई ग़रीब। भूख की ज्वाला से अपनी और अपने बाल-बच्चों की रक्षा करने के लिये, उन्हें रोज़ दौड़-धूप करनी पड़ती है। सुबह से शाम तक भोजन की समस्या हल करने में ये लगे रहते हैं। पर उनके सामने आज ही आज रहता है, कल की फ़िक्र करके वे कभी कुछ जमा नहीं करते। आज की आवश्यकता पूरी हुई, शाम को थोड़ी देरतक कागारोल रहा, फिर, सब-के-सब कौए सुख से सो गये। कल की आवश्यकता पूरी करने के लिये फिर इसी तरह परिश्रम करेंगे—और उसके बाद विश्राम।

पेट भरने के लिये कौआ परिश्रम ज़रूर करता है, पर उसका परिश्रम सदाचार की सीमा का उल्लंघन कर जाता है। वह चोरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी करता है, डाका भी डालता है। लपट-झपट, लूट-खसोट में शायद ही कोई पक्षी उसकी बराबरी कर सके। मनुष्य की तो वह हानि-मात्र करता है, पर छोटी-छोटी चिड़ियों का सर्वनाश कर डालता है। किसी के अंडे ले जाकर हज़म कर जाता है, तो किसी के बच्चे। उसके खाद्य पदार्थों की सूची देना असम्भव है। मनुष्य के खाने-पीने की चीज़ों में बहुत कम ऐसी होंगी जिनसे कौए को कोई परहेज़ हो। पर यह तो मनुष्य से भी कहीं आगे बढ़ जाता है, और संसार में सर्वभक्षी कहलाना चाहता है। रोटी-दाल, भात-तरकारी, पूरी-कचौरी, मलाई-मिठाई, फल-फूल, मांस-मछली, कीड़े-मकोड़े, ढोले-गुबरेले, कहाँ तक गिनावें। जो कुछ सामने आगया उसीको हज़रत ने चट से पेट में डाल लिया। किसानों को कौए बहुत नुक़सान पहुँचाते हैं। मक्का, मूँगफली और कहीं-कहीं धान की फ़सल का भी नाश कर बैठते हैं। आम, अंजीर, शहतूत तथा दूसरे फलों पर भी इनके ऐसे ही हमले होते रहते हैं। धान्य-रक्षा के लिये किसान तरह-तरह की तदबीरें करते हैं, मगर ऐसे ढीठ चोर से काम पड़ने पर उन्हें पूरी कामयाबी कब हो सकती है?

फिर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि जहाँ कौओं के काले कारनामों की इतनी लंबी सूची है, वहाँ उनसे हमारी थोड़ी भलाई भी होती है। जब कभी टिड्डी-दल किसी गाँव या फ़सल पर टूट पड़ता है, और किसानों में त्राहि-त्राहि मच जाती है, तब कौए उन उपद्रवी कीड़ों की संख्या घटाकर कुछ सहायता ज़रूर पहुँचाते हैं। पर टिड्डियों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कौओं के घटाये वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घट नहीं सकती, इसलिये उनकी इस सहायता का विशेष मूल्य नहीं। कौओं ने अगर नियमित रूप से हानिकारक कीड़ों का कलेवा किया होता, तो कृषक-मण्डली की ओर से उन्हें "अभिनन्दनपत्र" अवश्य मिलता, या कम-से-कम उसे पाने के वे अधिकारी ज़रूर होते। पर वे तो ऐसे कीड़ों की ओर तभी ध्यान देते हैं, जब इनकी बाढ़-सी आ जाती है। साधारण समय में उन्हें अनाज या फलों की जैसी चाह रहती है, वैसी कीड़ों की नहीं। उन्हें खाते भी हैं तो बतौर चटनी या अचार के। कौओं से दूसरी भलाई यह होती है कि वे गलीज़ की कुछ सफ़ाई ज़रूर करते हैं। मरे हुए चूहे, बिल्ली इत्यादि को कौआ अपने पेट की तेज़ आग से भस्म कर डालता है, और उस हद तक वायुमण्डल को दूषित होने से बचाता है।

(२)

साधारण कौए के अलावा एक और कौआ होता है, जिसे बिहार में "काग" कहते हैं, और संयुक्तप्रान्त की ओर "डोम कौआ" कहते हैं। हम उसे यहाँ "बड़ा कौआ" कहेंगे। कौए की यों तो और भी कई जातियाँ होती हैं, पर इस देश में प्रायः ये ही दोनों कौए मिलते हैं।

बड़ा कौआ भारतवर्ष-भर में पाया जाता है। दक्षिण में इसकी जो उपजाति मिलती है, उसकी चोंच और डैने कुछ छोटे होते हैं—पर साधारण कौओं की अपेक्षा, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम तमाम देश के बड़े कौए आकार में बड़े होते हैं। बड़े का सारा शरीर काला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है, पर साधारण कौए का सिर्फ़ पिछला भाग। इसका धड़ या अगला भाग काला न होकर मटमैला या भूरा होता है। रंग-रूप में थोड़ा-सा अन्तर होने पर भी बड़ा और बातों में साधारण कौए के ही समान होता है। हाँ, यह ज़रूर है कि बड़ा होते हुए भी वह उतना बड़ा ढीठ नहीं होता। शरारत और ढिठाई में तो साधारण कौए ने सब से बाज़ी मारली है।

बड़े कौओं को न जाने क्यों चमकीली चीज़ों से बड़ा प्रेम होता है और मौक़ा पाते ही वे उन्हें ले उड़ते हैं। चाँदी की छोटी-मोटी चीज़ें अक्सर इस तरह ग़ायब हो जाती हैं। पर कौए उन्हें किसी काम में नहीं लाते। या तो कुछ दूर ले जाकर कहीं गिरा देते हैं, या कहीं थोड़ी मिट्टी खोदकर उन्हें गाड़ देते हैं।

ऊपर हम कौओं की शरारत की ओर इशारा कर चुके हैं। छोटे-छोटे पौधों को उखाड़ कर फेंक देना, फूलों को तोड़ कर ले उड़ना, दूसरे पशु-पक्षियों को बिना मतलब चोंच से ठुकराकर नाकों दम करदेना—यह सब शरारत नहीं तो फिर क्या है? जान पड़ता है, कि जब कौआ खाकर अघा जाता है, तब मनोरंजन के लिये ऐसी हरकतें करता फिरता है। आपके गाय-बैल अगर बोल सकते तो बताते कि ये कम्बख़्त उन्हें कभी-कभी कितना दिक़ कर डालते हैं।

क्या आपने कभी कौओं की पंचायत देखी है? कौओं से यहाँ हमारा मतलब साधारण कौओं से है। बड़े कौए दलबन्दी से दूर रहते हैं, जिसे देखिये वही अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
पक्का रहा है। साधारण कौओं का समाज होता है और वे सामाजिक नियमों की पाबन्दी करते हैं। पंचायत क्यों बैठती है, उसमें कैसे विषयों की आलोचना होती है, यह हम अभी नहीं जान सकते। पर वह परिषद् बैठती ज़रूर है और उसमें काकगण बड़ी सरगर्मी से बहस करते हैं। बहुत कर के वह पंचायत किसी दोषी को दण्ड देने के लिये बुलाई जाती है। जो जाति का मुहँ काला करे या जाति पर अत्याचार करे, उसे कठोर से कठोर दण्ड देना चाहिये, यह कौओं की नीति है। इसीलिये ऐसी पंचायत के बाद दोषी या तो बिरादरी से ख़ारिज कर दिया जाता है या मार डाला जाता है।

फिर भी यह समझना भूल है कि कौओं के हृदय में प्रेम या करुणा नहीं होती। कौआ अपनी स्त्री को, अपने बाल-बच्चों को बहुत प्यार करता है। अपने किसी भाई को मुसीबत में देखकर वह जी-जान से उसकी मदद करने को तैयार हो जाता है। यह दूसरी बात है कि ऐसी परिस्थिति में उसे प्रायः काँव-काँव करके ही सन्तोष करना पड़ता है।

पक्षी अपने घोंसलों में साल-भर नहीं रहते। घोंसला तो तब बनाते हैं, जब अंडा देने का समय आता है। कौओं का भी यही हाल है। जनवरी-फ़रवरी से पहले आप उनके घोंसले न पावेंगे। हाँ, बंगाल में कहीं-कहीं दिसम्बर में ही उनके घोंसले तैयार हो जाते हैं। बड़े कौए का घोंसला बहुत ऊँचे वृक्ष पर होता है। साधारण कौए को गाँव के आस-पास जो पेड़ ठीक जँच जाय, उसी पर वह बसेरा कर लेता है। नर और मादा दोनों ही घोंसले के लिये सामान जुटाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर घोंसला बनाने का काम प्रायः मादा ही करती है। साधारण कौओं का घोंसला उतना अच्छा नहीं होता, जितना बड़े कौओं का। इसके लिये ख़ासकर डण्ठल और टहनियां जुटाई जाती हैं, और भीतर नरम घास या बालों का बिछावन किया जाता है। बाल कभी तो घोड़े की पूँछ के होते हैं, कभी मनुष्य के सिर, दाढ़ी या मूँछ के। सम्भव है, कौए के घोंसले में लम्बा-सा बारीक तार का टुकड़ा या किसी के चश्मे का सुनहला फ्रेम भी मिल जाय। प्रायः दो दिन इस काम में लगते हैं, फिर मादा अण्डे देती है। इसका समय जनवरी से मई तक है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में कौआ कुछ देर से अण्डा देता है। अण्डों की संख्या प्रायः चार-पाँच होती है, पर इसमें कमी-बेशी भी हो सकती है। इनके रंग में बड़ी विचित्रता होती है, पर इनकी ज़मीन प्रायः नीली-हरी या फ़ीरोज़ी रहती है। अण्डा देने के बाद कौए अपने घोंसले को सूना नहीं छोड़ते। दूसरी चिड़ियों के अण्डे चुराने में वे स्वयं सिद्धहस्त होते हैं, इसलिये उन्हें डर बना रहता है कि कहीं हमारे अंडे भी चोरी न चले जायँ!

बच्चे निकल आये, उड़ने लायक हो गये, फिर कौओं ने घोंसले को सलाम किया और पेड़ की डाल पर रात बिताने लगे। साधारण समय में आप सैकड़ों कौओं को प्रायः एकही बग़ीचे में या आस-पास के वृक्षों पर विश्राम करते हुए पावेंगे। अपने-अपने वृक्ष की प्रत्येक को पहचान रहती है। सन्ध्या होते ही वह अपनी जगह पहुँच जाता है और थोड़ी देर तक काँव-काँव करके सो जाता है। इस प्रकार एकत्र सोने की कौओं को और कुछ दूसरी चिड़ियों को एक ख़ास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदत होती है। इसीलिये जब कभी कहीं प्रचंड आँधी उठती है या ओले पड़ते हैं, तब वहाँ की भूमि इनकी लाशों से ढक जाती है।

कौओं के विषय में अभी बहुत कुछ कहना है, पर स्थानाभाव से दो-चार ज़रूरी बातें लिख कर ही हम 'काक-प्रकरण' समाप्त करते हैं।

हिन्दुओं की तरह पक्षियों को भी स्नान से बड़ा प्रेम होता है। कुछ पक्षी तो हमलोगों की तरह जल से स्नान करते हैं और कुछ केवल धूल या मिट्टी से। कौआ जल का व्यवहार करता है। सारा शरीर तो पानी में नही डुबाता, पर अपने परों की थोड़ी-बहुत सफ़ाई ज़रूर कर लेता है।

अवस्था-विशेष में, कौए की बोली को कुछ लोग शकुन मानते हैं, और समझते हैं कि वह किसी के आने की सूचना देता है! उस समय कौए की निन्दा तो दूर रही, उसकी सौ-सौ ख़ुशामदें होने लगती हैं। जैसेः—

बैठी सगुन मनावति माता,
कब ऐहैं मेरे लाल कुशल घर? कहहु काग! फुरि बाता।
दूध भात की दोनी दैहौं, सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित विलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं॥

दन्तकथाओं में कभी-कभी दूत का काम कौए से लिया गया है। कौओं के ही वंश में काकभुशुण्डि जैसे महाज्ञानी हो गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुलसीदासजी की रामायण पढ़नेवाले उनके नाम से अवश्य परिचित होंगे। गरुड़ के प्रश्न का उत्तर देते हुए आपने कहा था—

पर-उपकार, वचन-मन-काया,
सन्त सहज सुभाव खगराया!
सन्त सहहिं दुख पर-हित लागी;
पर-दुख हेतु असन्त अभागी ॥

क्या ही अच्छा होता, यदि कौए अपने पूज्य पूर्वज के इस महान उपदेश का थोड़ा-बहुत भी पालन करते!

कौए का काँइयाँपन काफ़ी मशहूर है। चुस्ती-चालाकी में वह सब पक्षियों से आगे है। अण्डा सेने के समय वह आवश्यकता से अधिक चौकन्ना रहता है। फिर भी सृष्टि की लीला ऐसी विचित्र है कि ऐसे चोर-चाँई को भी दूसरी चिड़िया बात-की-बात में उल्लू बना-कर अपना उल्लू सीधा कर लेती है। इसका वृत्तान्त दूसरे प्रकरण में पढ़ने को मिलेगा।

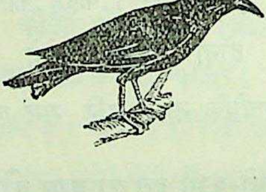

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोयल

"कुहू-कुहू कैलिया कूकन लागी"—

बात वसन्त-काल के प्रारम्भ की है। जाड़े-भर यह लापता थी। उत्तर भारत में जहाँ सर्दी अधिक पड़ती है, वहाँ उस समय रहना इसके लिये सम्भव नहीं। बंगाल-जैसे प्रान्त में कुछ कोयलें भले ही रह जाती हों, और बिहार में भी कुछ भले ही पत्तों की आड़ में छिपकर समय काट लेती हों—पर आम तौर से यह कहा जा सकता है कि कोयल नवम्बर में उत्तर से दक्षिण को चल देती है। फिर जब वसन्त या मौसिमे-बहार आता है, तब मलयानिल के साथ यह भी लौटती है और सुरभित सघन निकुञ्जों में रस बरसाती हुई कूकने लगती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोयल देखने में काली कुरूप होती है। धूर्त ऐसी, कि कौए के भी कान काट लेती है। फिर भी अपनी मधुमयी वाणी के कारण उसने सबके हृदय में ऐसा प्रेम का स्थान कर लिया है कि जिसे देखिये वही उसकी प्रशंसा कर रहा है, उसे आशीर्वाद दे रहा है। ज्यों-ज्यों गर्मी बढ़ती है, इसका स्वर ऊँचा होता जाता है। दिन हो या रात, मन की मौज होते ही संगीत-सुधा बरसाने लगती है। प्रायः पौ फटने से पहले तो यह बड़ी ही उमंग से गाती है।

गाने में यह पक्षियों के बीच उस्ताद है, तानसेन है,—यह आप सुन चुके। अब इसकी दूसरी तरह की उस्तादी का हाल सुनियेः—

इस जाति के पक्षियों की यह विशेषता है कि वे प्रायः अपने अण्डे दूसरी चिड़ियों के घोंसलों में रख आते हैं। कोयल अपने अण्डे आप नहीं सेती। कौओं से बेगारी कराके अपना काम निकालती है। उनके आगे इसकी ज़ोर-ज़बर्दस्ती तो चलती नहीं, इसलिये उन्हें धोखा देकर ही उनसे यह बेगार कराती है।

नर और मादा पहिले यह निश्चय करते हैं कि किस कौए की आँखों में धूल झोंकना होगा। निश्चय होते ही नर उसी पेड़ पर जा बैठता है और अपना राग अलापने लगता है। कौए कोयल से यों ही जलते हैं। देखते ही उस पर टूट पड़ते हैं और उसका पीछा करने लगते हैं। क्रोध के मारे थोड़ी देर के लिये अपनी सारी होशियारी खो बैठते हैं और घोंसले को सूना छोड़कर नर, मादा दोनों उस कोयल के पीछे निकल पड़ते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह धूर्त तो इसीलिये वहाँ जा बैठा था, और कौओं को उभारा था। जहाँ उन्होंने पीछा किया, वह समझ गया कि कार्य सिद्ध हुआ और एक अजीब तरह की बोली 'कर्री-कर्री' बोलकर मादा को सूचित कर दिया कि मैदान साफ़ है, अपना काम कर जाओ। बस, वह फ़ौरन कौओं के घोंसले में पहुंची और वहाँ अपना अण्डा रख दिया। बन पड़ा तो उनका एक अण्डा नीचे गिरा दिया या चोंच में दबाकर साथ लेती गई।

उधर कौओं को कुछ भी खबर नहीं कि यहाँ क्या कार्रवाई हो गई। वे तो पीछा करते ही जा रहे हैं!

कोयल उड़ने में कौए से कहीं तेज़ होती है। अगर वह चाहे, तो बात-की-बात में कहीं-से-कहीं निकल जाय। पर उन कौओं को अटकाने के लिये वह अपनी चाल धीमी कर देती है, और अपने तथा उनके बीच सिर्फ़ इतना ही फ़ासला रहने देती है कि वे उसे पा न सकें। कौए मन-ही-मन कहते जाते हैं कि अब पकड़ा, अब पकड़ा। उन्हें क्या ख़बर कि इस तरह उड़ने में भी कोयल की एक चाल है।

जब कुछ समय बीत जाता है और कोयल समझती है कि मतलब पूरा हो गया होगा, तब वह अपनी चाल तेज़ कर देती है, और कौओं से बहुत दूर निकल जाती है। तब उन्हें निराश होकर घर लौटना पड़ता है। पर घर लौटने पर भी बात उनकी समझ में नहीं आती। उन्हें सन्देह तक नहीं होता कि हमारे घोंसले में कुछ गोलमाल हुआ है। आकार-प्रकार में कोयल का अण्डा कौए के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अण्डे से भिन्न होता है, फिर भी प्रकृति की लीला देखिये कि कौए की आँखों पर पर्दा-सा पड़ जाता है। अण्डे से कोयल का बच्चा निकलने पर भी उनका मोह या अज्ञान बना ही रहता है। चुग चुगकर दाना लाते और उसे खिलाते हैं।

विलायती कोयल के विषय में पढ़ा है कि वह एक ऋतु में प्रायः पच्चीस अण्डे देती है और सब को बारी-बारी से कौओं के घर पहुँचा आती है। उसका नियम प्रत्येक घोंसले में एक ही अण्डा रखने का है, पर कभी-कभी दो कोयलों की कृपा एक ही घर पर होती है। कोयल इस काम के लिये ऐसे घोंसले को चुनती है, जिसमें हाल में ही अण्डे दिये गये हों। कोयल और कौए के बच्चे प्रायः एक ही समय में जन्म ग्रहण करते हैं। कोयल का बच्चा बड़ा दुष्ट होता है। कौओं के अण्डे हों या बच्चे उन्हें पीठ से ठेल-ठालकर नीचे गिरा देता है, जिससे वे प्रायः नष्ट हो जाते हैं। जन्म लेने के अधिक नहीं दो-ही-एक दिन बाद आपकी ऐसी करतूत होती है। हिस्सेदारों का काम तमाम करके आप दिन-दिन मोटे-ताज़े होने लगते हैं और थोड़े ही समय में माँ-बाप से भी बड़े हो जाते हैं। दुष्टता के साथ इसमें धूर्तता भी पाई जाती है। जब बच्चा पहले-पहले घोंसले से बाहर निकलता है, तब अपनी बोली न बोलकर कौओं की बोली बोलने की चेष्टा करता है। उधर संतति-स्नेह कौओं को ऐसा अन्धा कर देता है कि वे इसे अब भी पहचान नहीं पाते। साथ लिये फिरते हैं, और खिलाते-पिलाते हैं। एक दिन यह आप-ही-आप उन्हें सलाम कर अपनी राह लेता है।

मनुष्य, अनुभव से, शिक्षा-दीक्षा से बहुत-सी बातों को जान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाता है। पक्षियों के लिये न तो कहीं पाठशाला है, न पुस्तकालय है, न समाचारपत्र हैं। कोयल-जैसे पक्षी को अपने माता-पिता के साथ रहने का सौभाग्य भी प्राप्त नहीं होता। फिर कौन इसे इतनी बातें सिखाता है? एक शब्द में इस प्रश्न का उत्तर है—'सहजज्ञान'। आत्मरक्षा और वंशवृद्धि के लिये क्या करना और क्या न करना आवश्यक है, यह पशु-पक्षी स्वभाव से ही जानते हैं। जिन्हें इस विषय में और भी अधिक जिज्ञासा हो, उन्हें विज्ञान का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिये।

कौए को कोयल की कारस्तानी का कभी पता नहीं चलता। फिर भी उसकी अन्तरात्मा मानो यह कहती रहती है कि इस चिड़िया से सावधान रहना। यही कारण है कि इसे अपने घर के पास देखते ही कौआ आग-बबूला हो जाता है।

कोयल को संस्कृत में 'परभृत,' 'परपुष्ट' आदि इसीलिये कहते हैं कि उसका पालन दूसरों के द्वारा होता है।

यों तो कोयल प्रायः उतनी ही बड़ी होती है, जितना कि कबूतर, पर पूँछ के कारण उसकी लम्बाई डेढ़ फ़ुट तक पहुँच जाती है। नर बहुत काला होता है। उसकी चोंच पतली और पूँछ लम्बी होती है। मादा कुछ भूरे रंग की होती है और उसके शरीर पर कुछ दाग़-से रहते हैं। नर और मादा दोनों की आँखें लाल और पैर सीसे के रंग के होते हैं। इनका आहार विशेषकर फल है।

कोयल की बोली जिसे 'कूक' या 'कुहू' कहते हैं लम्बी और सुरीली होती है और प्रायः कुहू-कुहू-कुहू के रूप में निकलती है। अपने संगीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में पंचम स्वर शायद इसी की बोली से लिया गया है । कोकिल की कलित काकली पर कवि-कुल कितना विमुग्ध है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं ।

जिस समय दूसरे पक्षी घोंसला बनाने की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं या जिस समय अण्डा सेने में उनके प्रेम और धैर्य्य की परीक्षा होती रहती है, उस समय कोयल बस गाने में मस्त रहती है। कविता करने और गाने-बजानेवालों की प्रकृति ही कुछ और हुआ करती है। लेख और रचना में जो अच्छी-से-अच्छी बन्दिश बाँधता है, वह मामूली छप्पर भी नहीं बाँध सकता। जो दीपक-राग का अभ्यास करता है, उसे यह फ़िक्र नहीं रहती कि घर में दीया किस तरह जलेगा। कोयल का भी यही हाल है। यहाँ गाने से फ़ुरसत किसे कि घास इकट्ठा कर घोंसला बनावे और उसमें अण्डे देकर उनपर चुपचाप बैठा रहे। पर साथ ही कोयल चालाक भी परले सिरे की होती है, इसलिये अपना काम बिगड़ने नहीं देती । हमारे कितने ही कवि और गवैये भूखों मर जाते हैं, पर कोयल तो अपना बाल भी बाँका नहीं होने देती। अपना नहीं तो दूसरे का घर मौजूद है ! अपने पास इतना समय नहीं कि अण्डों पर बैठें और बच्चों का लालन-पालन करें, पर जब बेगार काफ़ी तादाद में मिल जाती है, तब फिर कोयल क्यों घर के जंजाल में पड़े और अपना अमूल्य समय नष्ट करे ?

यह प्रश्न किया जा सकता है कि कोयल अपना अण्डा कौए के घोंसले में पहुँचकर देती है या उसे और कहीं देकर वहाँ पहुँचा आती है ? इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकता। एक विशेषज्ञ का कहना है कि संभव है, अवस्था-विशेष में कोयल ऐसा नहीं करती हो, पर साधारणतः वह घोंसले में पहुँचकर ही अंडा देती है। जिन लोगों ने उसकी चोंच में अण्डा देखकर इसके विपरीत अनुमान किया है, उन्हें वे यह जवाब देते हैं कि वह तो संभवतः कौए का अंडा था, जिसे वह गिरा देने के लिये दबाये जा रही थी। इस प्रश्न के निर्णय के लिये अभी और अनुसन्धान की आवश्यकता है।

बरसात में न जाने क्यों कोयल के गले का ज़ोर जाता रहता है। फागुन से वैशाख तक जो बोली सुनाई देती थी, उसे सुनने को जी तरसता है, मगर अब कहाँ सुनने को मिलती है! कोयल के गले में अब न वह सोज़ है न साज़ है; कह सकते हैं कि उसका बोलना न बोलना बराबर है।

'तुलसी' पावस के समय, धरी कोकिला मौन,
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ?

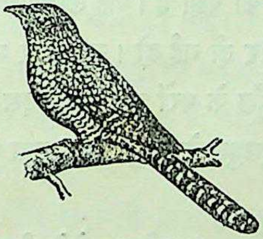

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुजंगा

भँवर पतंग जरै औ नागा ;
कोकिल भुजैल औ सब कागा ।

—जायसी

भुजंगा काले रंग का पक्षी है। पूँछ लम्बी और दो सिरों की होती है—मानों बीच से चीर दी गई हो। नर और मादा दोनों एक से ही काले-कलूटे होते हैं। पूँछ के परों की संख्या दस होती है।

आकार में इसे बुलबुल के समान समझना चाहिए। भुजंगा को ही भुजैल कहते हैं।

घुरघुरा, भुनगा, टिड्डा, खटकीड़ा—ऐसे ही जीवों से यह पेट की जलन मिटाता है। खेत में पैदा होनेवाली किसी चीज़ की ओर ध्यान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं देता। इसलिए इसे किसानों का परम उपकारी कह सकते हैं। ज़मीन से यह प्रायः ऊपर ही रहता है। जिन पक्षियों की पूँछ लम्बी होती है वे ज़मीन पर कम उतरते हैं। कारण यह है कि शिकार करने में ज़मीन पर लम्बी पूँछ बाधक होती है। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें डर होता है कि धूल में पड़कर पूँछ मैली-कुचैली हो जायगी। इसलिए उससे बचते हैं। जो हो, भुजंगा ज़्यादातर ज़मीन से ऊपर ही शिकार करता है। आपको इसका तमाशा देखना हो, तो सन्ध्या समय किसी ऐसी जगह जा खड़े हों, जहाँ टेलीग्राफ़ का तार लगा हुआ हो। बहुत सम्भव है, आप उस पर दो-एक भुजंगों को बैठे पायेंगे। और पक्षी अपने-अपने घर चले गये, पर भुजंगा अभी तक शिकार की तलाश में है। बात यह है कि उसके खाने लायक़ बहुत-से कीड़े-मकोड़े उस समय बाहर निकलते हैं, इसलिए वह उनकी घात में वहाँ बैठा रहता है। जहाँ किसी कीड़े पर नज़र पड़ी, झपट पड़ा और पकड़कर फिर अपनी जगह जा बैठा। दिन में भी शिकार करता है। अक्सर देखा जाता है कि हल चलते समय यह खेत में मौजूद है, और जुताई होने से जो कीड़े बाहर आ जाते हैं, उन्हें चुगता जाता है। कभी-कभी आप इसे गाय-बैल की पीठ पर आसन जमाये पायेंगे। उनके चलने से जो पतंगे उड़ते हैं, उन्हें अपने पेट में डालने के लिए ही वह वैसी जगह जा बैठता है।

भुजंगा झगड़ालू और शरारती होता है। कौए से इसकी बड़ी दुश्मनी है। अण्डा देने के समय कभी-कभी इन दोनों की लड़ाई देखते ही बनती है। कुत्ते-बिल्ली को भी चोंच से ठुकराना इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहज स्वभाव है। लुटेरा ऐसा, कि मैना-जैसे पक्षी का आहार भी छीन लेता है। हुदहुद तो डर के मारे चीं-चपड़ भी नहीं करता और और अपना शिकार चुपचाप इसके हवाले कर देता है। सुनते हैं, कि मैना को डराने के लिए कभी-कभी यह शिकरे की सी बोली बोलता है, जिससे वह डरकर अपना शिकार छोड़ दे और भाग जाय।

भुजंगा बड़ा वीर पक्षी है; सभी से लड़ने को तैयार रहता है। घोंसला बनाने के दिनों में इसका मिज़ाज इतना गर्म रहता है, कि अपने वृक्ष पर या उसके आस-पास कौए या चील को देख ले, तो उसे ठुकराये बिना न रहे। बन्दर भी आ जायँ तो कुछ सीखकर जायँ। इसकी इसी वीरता से लाभ उठाने के लिए फ़ाख़्ता और पीलक प्रायः इसी की छत्र-च्छाया में आकर बसते हैं। इन ग़रीबों पर इसकी बराबर दयादृष्टि रहती है, और चिड़ियों में इसका आतङ्क ऐसा है कि कोई भी डाकू या लुटेरा उनके घोंसलों पर पैर रखने की हिम्मत नहीं करता। कहीं-कहीं इसे, औरों का रक्षक होने के कारण, कोतवाल कहते हैं। कौए या बन्दर चाहे जो करें, पर आपसे हमारी प्रार्थना है कि भुजंगे का घोंसला या उसके अंडे देखने की चेष्टा न करें। एक महाशय ने ऐसी चेष्टा की थी। नतीजा यह हुआ कि उसकी चोंच की ठोकर से उनका सिर फूटते-फूटते बचा! आख़िर कोतवाल साहब ठहरे!!

भुजंगा अपना घोंसला अप्रैल के लगभग बनाता है। इसके लिए वह किसी ऊँचे वृक्ष को चुनता है। घास-फूस, मकड़ी का जाला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कुछ लकड़ी जुटाकर वह अपना घोंसला तैयार करता है। यह देखने में सुन्दर और प्याले की शकल का होता है। इसकी चौड़ाई प्रायः चार इंच होती है। भीतर घोड़े की पूंछ के वाल भी कभी-कभी बिछा दिये जाते हैं। अंडों की संख्या चार होती है, कभी-कभी तीन या पाँच भी। रंग सफ़ेद या कुछ सफ़ेदी लिए हुए लाल होता है और कभी-कभी कुछ धब्बे भी नज़र आते हैं। बिहार में इसके घोंसला वनाने का समय मई है।

जिस समय नर और मादा सम्बन्ध जोड़ने की फ़िक्र में रहते हैं, उस समय वड़े जोश-ख़रोश से बोलते हैं। बोलते जाते हैं और सिर झुकाकर एक दूसरे को सलाम करते जाते हैं। इसकी कई बोलियाँ होती हैं। कुछ सुरीली, कुछ कर्कश। वैशाख-जेठ में कुछ रात बीतने पर यह वड़ी सुहावनी बोली बोलता है। पौ फटने से पहले बोलना इसका नियम-सा होता है। एक भुजंगा सफ़ेद छातीवाला होता है, जिसकी बोली वहुत ही मीठी होती है, पर वह वहुत कम दिखाई देता है। इसके वच्चे माँ-बाप जैसे काले-कलूटे नहीं होते। उनकी पूँछ भी वैसी लम्बी नहीं होती।

भुजंगा धीर-वीर है; बुद्धिमान है; काफ़ी रोब-दाब रखता है। फिर भी उसके समान रंग-रूपवाली एक कोयल उसे धोखा दे ही देती है और अपनी बेगार करा ही लेती है। कोयल की चालबाज़ी तो बे-मिसाल है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भीमराज

भीमराज को भुजंगे का बड़ा भाई समझिए। आकार में यह उसकी अपेक्षा प्रायः दूना होता है। इसकी चोंच काफ़ी मज़बूत होती है और इसके सिर पर कलगी या चोटी के रूप में कुछ ख़ास पर होते हैं। पूँछ के किनारों के पर डेढ़ फ़ीट से भी ज़्यादा लम्बे होते हैं। बाक़ी हिस्से की लम्बाई साधारण-सी होती है—सात इंच से भी कम। यह भारतवर्ष के अधिकांश भाग में पाया जाता है। इसकी बोली बड़ी सुहावनी होती है, इसलिये लोग इसे पालते भी हैं। कुछ विशेषज्ञों की सम्मति है कि गाने में और कोई पक्षी भीमराज की बराबरी नहीं कर सकता। दूसरे पक्षियों और पशुओं की बोली की नक़ल भी यह बड़ी ख़ूबी से कर सकता है। यही कारण है कि यह इतना लोकप्रिय है। पर अगर इसे पालतू बनाकर रखना है तो दो चीज़ों का प्रबन्ध ज़रूर होना चाहिए--इसके रहने के लिये बड़े पिंजरे का और इसके खाने के लिये सजीव कीड़ों का।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महोखा

कूजत पिक मानहुँ गज माते ।
ढेंक महोख ऊँट बिसराते

—तुलसी

महोखा कोयल जाति का पक्षी है, पर न तो उसकी तरह चालबाज़ है, न ख़ानाबदोश। यह घरबारी चिड़िया है। आप जून जुलाई में इसका घोंसला देख सकते हैं। इसे महोक या महोख भी कहते हैं। महोखा प्रायः डेढ़ फ़ीट लम्बा होता है। इसका शरीर देखते हुए इसके डैंने छोटे और पैर ज़्यादा लम्बे जान पड़ते हैं। डैंने खैरे रंग के होते हैं, पूँछ और सिर काले और आँखें लाल। पूँछ बहुत लम्बी और चोंच मज़बूत होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसकी बोली बड़ी तेज़ होती है और यह देरतक लगातार बोलता रहता है। कभी-कभी तो यह 'हुट हुट' की ध्वनि निकालता है और कभी कभी 'कोक-कोक' की।

महोखा कीड़े-मकोड़े खाता है। कभी-कभी छिपकली या छोटे साँप इत्यादि भी। यह दौड़ने में तेज़ होता है, और प्रायः ज़मीन पर ही शिकार करता है। सर्द ज़मीन इसे ज़्यादा पसन्द है। पेड़ पर आप इसे गिलहरी की तरह उछलते-कूदते और शिकार पकड़ते पायेंगे। यह उड़ने में कमज़ोर होता है और प्रायः अकेला ही रहता है। कीड़ों या छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं को यह पैर से दबाकर चीर डालता है।

गर्मी बीतने पर यह घोंसला बनाता है। उस समय नर और मादा दोनों बड़ा शोर मचाते हैं। यह भी देखने में आता है कि नर अपनी पूँछ और डैनों को फैलाकर मादा के सामने नाचता है। घोंसला बड़ा-सा होता है, और वह किसी ऊँचे वृक्ष पर या बाँसवाड़ी में तैयार किया जाता है। नीम, जामुन, ढाक इत्यादि की टहनियों और पत्तों से ही प्रायः यह अपना घोंसला बनाता है। घोंसले के ऊपर कभी-कभी छतरी रहती है, जिससे देखने में वह बड़े गेंद-सा मालूम होता है। जून से अगस्त तक इसके अण्डे देनेका समय है। अण्डा प्रायः डेढ़ इंच लंबा होता है। अगस्त-सितम्बर में आप महोखा के बच्चों को देख सकते हैं। जबतक वह सयाने नहीं हो जाते, घोंसला नहीं छोड़ते। जब उनके डैनों में कुछ सफ़ेद पर होजाते हैं, तब वह घोंसला छोड़ देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पक्षी-परिचय:—

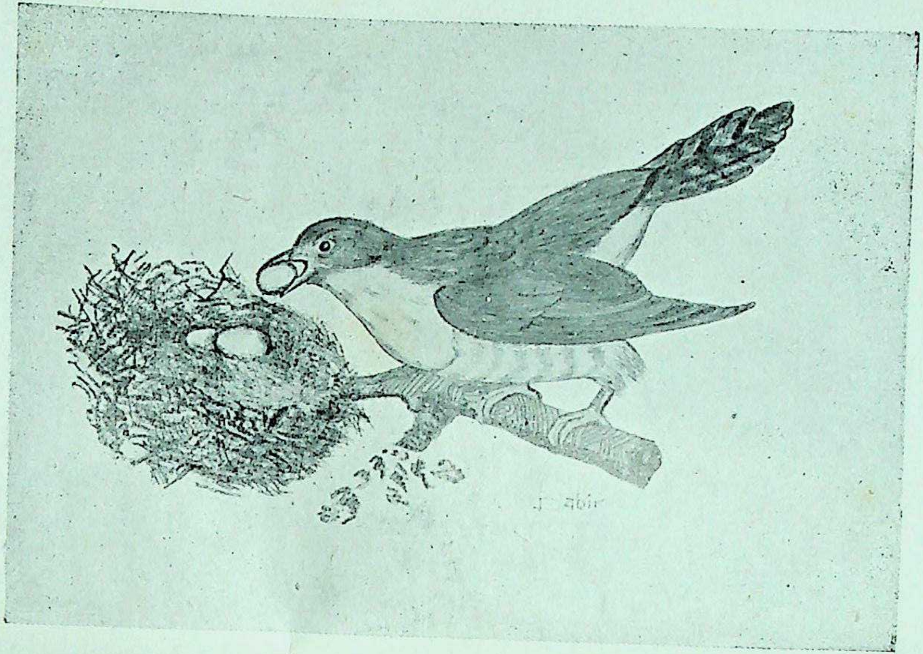

पृष्ठ ३५]

पपीहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पपीहा

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर॥

—'तुलसी'

पीव पीव कर लाग पपीहा।
तुही तुही कर गडुरी जीहा॥

—'जायसी'

शिकारी चिड़ियों में अगर आपने शिकरे को देखा है, तो आप पपीहे को आसानी से पहचान सकते हैं। आकार-प्रकार में यह उससे बहुत मिलता-जुलता है। आंख और पर पीले होते हैं। बाक़ी शरीर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूरापन लिए हुए बादामी। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। लम्बाई एक फुट से ज़्यादा नहीं होती। चोंच और पैर कोयल की अपेक्षा छोटे हैं। नर और मादा दोनों देखने में एक से ही लगते हैं। इसकी एक उपजाति के ऊपर के सभी पर काले, और नीचे के सफ़ेद होते हैं। पूँछ के अन्त में भी कुछ पर सफ़ेद पाये जाते हैं।

पश्चिम में बीकानेर और पूर्व में ढाका—बस इन्हीं के बीच पपीहा मिलता है। न तो वह वह सिन्ध या पंजाब में पाया जाता है, और न आसाम में। सुनते हैं, कि बम्बई की तरफ़ भी पपीहा नहीं होता। संयुक्त प्रान्त और बिहार में यह साधारण पक्षी है। मद्रास प्रान्त में मिलता है, पर बहुत कम। काला पपीहा उत्तर भारत में सिर्फ़ बरसात के दिनों में पाया जाता है। उसके बाद दक्षिण की ओर चल देता है। एक बात ज़रूर है। जिन प्रान्तों में पपीहा साधारण पक्षी है वहाँ भी वह अदृश्य-सा रहता है। पत्तों की आड़ में रहना इतना पसन्द करता है कि हम उसे बहुत कम देख पाते हैं।

मगर पर्दे में रहकर भी वह अपनी बोली से संसार को अपने अस्तित्व की सूचना देता रहता है। दिन रात पी-पी रटता रहता है। इसकी बोली ने इसे हमारे देश के साहित्य में अमर कर दिया है। इसका स्वर क्रमशः तीव्र होता जाता है, और अन्त में सप्तम तक पहुँच जाता हैं। बोलते समय रात को पपीहों की शृंखला-सी बंध जाती है। एक की आवाज़ दूसरे के कान में पड़ते ही वह भी पी-पी करने लगता है। इस प्रकार दूर-दूर के पपीहे थोड़ी ही देर में "कन्सर्ट"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शुरू कर देते हैं। पर बीच का कोई पपीहा किसी तरह चुप कर दिया जाय तो शृंखला टूट जाती है, और थोड़ी देर के लिये शान्ति स्थापित हो जाती है। अंगरेज़ों को इसकी बोली बहुत बुरी लगती है। उनका कहना है कि उसे देर तक सुनने से रात को नींद तो आती ही नहीं, कभी-कभी दिमाग़ ख़राब होने की नौबत भी पहुँच जाती है। पर इस देशवाले तो ऐसी शिकायत नहीं करते। अंग्रेज़ों को हमारे कवि अरसिक ही कहेंगे। इसके बोलने का ख़ास समय फ़रवरी से जून तक है। बिहार प्रान्त में यह गर्मी के दिनों में ही ज़ोर-शोर से बोलता है। पर कभी-कभी हम इसकी बोली दिसम्बर में भी सुनते हैं। कलकत्ते में इसके बोलने का ख़ास समय बरसात है। पपीहा जब दिन-रात बोलता ही रहता है, तब आख़िर सोता कब है? आशा है, आप स्वयं इसका पता लगाने की कोशिश करेंगे।

इसके घोंसले की बात मत पूछिये। कोयल की तरह इसे भी गाने से इतनी फुरसत नहीं मिलती, कि छप्पर बाँधने जाय! अण्डे देकर मादा उन्हें सतभइये के घोंसले में रख आती है और बाक़ी काम वे ही ख़ुशी-ख़ुशी कर देते हैं। धूसर और काले दोनों ही पपीहों के अण्डे नीले होते हैं। सतभइये के अण्डों का रंग भी यही है। पर पपीहे को कोयल की तरह चाल नहीं चलनी पड़ती। एक तो सतभइया योंही बड़ा सीधा-सादा पक्षी है। दूसरे, पपीहे को देखते ही वह शायद शिकरा समझकर उससे बेतरह डर जाता है, और घोंसला छोड़ के भाग जाता है। पपीहा निर्भय निश्शङ्क होकर वहाँ अपने अण्डे रख आता है। पर इस विषय में अभी पूरी जाँच नहीं हुई है, इसलिये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। वास्तव में पक्षियों के जीवन के सम्बन्ध में हमें अभी बहुत-कुछ जानना बाक़ी है। इस पुस्तक को पढ़कर यदि आपमें से कुछ लोगों को भी यह हौसला हुआ कि ऐसी बातों का पता लगावें और अपने भाइयों के ज्ञान की वृद्धि करें तो लेखक अपना श्रम सार्थक समझेगा।

यह लेख सितम्बर के महीने में लिखा जा रहा है। इस समय कितने ही सतभइये पपीहों के बच्चों को अपने साथ लिये, इधर-उधर फिरते हैं। आकार-प्रकार में बच्चे अपने इन माँ-बाप से इतने भिन्न हैं, फिर भी अज्ञान-वश सतभइये उन्हें अपनी ही सन्तान समझते हैं।

पपीहे के पानी पीने के विषय में हमारे साहित्य में विचित्र कल्पना की गई है। जो दोहा इस प्रकरण के आदि में उद्धृत किया गया है, उसमें इस बात की ओर इशारा है। कवियों का कहना है कि पपीहा केवल स्वाति-नक्षत्र में बरसे हुए जल से अपनी प्यास बुझाता है। प्यास से भले ही मर जाय, पर जब तक उस नक्षत्र में मेंह न बरसे, तब तक एक बूँद भी दूसरा जल ग्रहण नहीं कर सकता। हमें तो यह कवियों की कल्पना-मात्र जान पड़ती है। जो हो, कुछ कवियों ने इस प्रसंग में पपीहे की प्रशंसा के पुल बांध दिये हैं—और, ऐसे शब्दों में कि शुष्क वैज्ञानिक पर भी थोड़ी देर के लिये उनका जादू काम कर जाता है। एक नमूना लीजिए:—

लागे सर सरवर परयौ, करयौ चोंच घन-ओर ;
धनिधनि चातक प्रेम तव, पन पाल्यौ बरजोर !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पन पाल्यौ बरजोर, प्रानपरजंत निबाह्यौ—
कूप नदी नद ताल सिंधुजल एक न चाह्यौ ॥
बरनै दीनदयाल, स्वाति बिन सब ही त्यागे।
रही जन्म-भरि बूँद-आस, अजहूँ सर लागे ॥

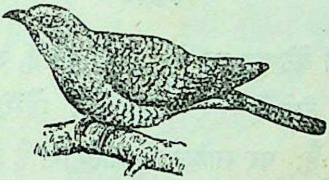

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरैया

जिस कमरे में बैठे हम यह लेख लिख रहे हैं, उसमें किसी ईश्वर-भक्त की तस्वीर टँगी है और उसके पीछे गौरैये का घोंसला है। छोटी-सी चिड़िया है; पर साहस की बलिहारी है कि मनुष्य के घर में ही आसन जमा देती है और कोई लाख बुरा माने, हटने का तो नाम नहीं लेती। अँगरेज़ों के कभी-कभी नाकों दम कर देती है। एक ने लिखा है कि अगर घनिष्ठता इसी को कहते हैं कि पंखे की डोरी पर दिन-भर बैठी चिट-चिट करती रहे, किसी को कोई काम करने न दे, आपस में लड़ते-लड़ते मेज़ पर आगिरे, दावात उलट दे, और सजे-सजाये कमरे को घासफूस या चिथड़ों से भर दे, तो मैं यही कहूँगा कि गौरैये की घनिष्ठता से परमात्मा हम सबकी रक्षा करे! वास्तव में, यह इस बात की ज़रा भी परवा नहीं करती कि हमने कहाँ बसेरा

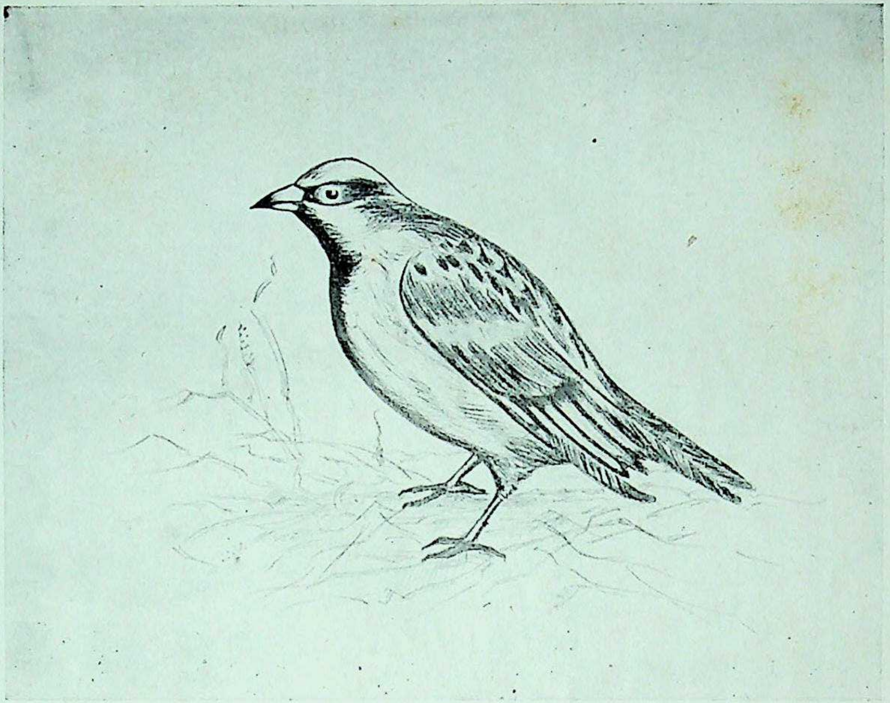

गौरैया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया है और देश-काल के अनुसार हमारा व्यवहार क्या होना चाहिये। आप हमारे घर में रहना चाहते हैं, तो सहर्ष रहें, पर अपना चाल-चलन ऐसा रक्खें कि हमें बात-बात में कष्ट न हो और हमें आपको भला-बुरा न कहना पड़े। एक तो आपकी बुरी लत दीवार की कार्निस में बैठकर शोर मचाने की है। बोलना ही है, तो कहीं बाहर जाकर बोलिये। हमारा मकान कोई सभा-भवन नहीं है कि आप चुप होने का नाम ही नहीं लेते। आपकी दूसरी बुरी लत साफ़-सुथरे कमरे को गन्दा कर देने की है। घोंसला बनाने के लिये जो सामान जुटाते हैं, उसका कुछ हिस्सा न जाने क्यों हमारे ऊपर डाल देते हैं। तरह-तरह की चीज़ें हमारे पलँग, मेज़ या गद्दे पर आपकी बदौलत बरसती ही रहती हैं। आपसे एक ख़ास प्रार्थना है। महाशयजी, आपस में इतना लड़ाई-झगड़ा तो न कीजिये। मियाँ-बीबी दोनों को शान्तिप्रिय होना चाहिये, ख़ासकर जब कि दूसरों के घर में रहते हैं। यह आप शायद भूल गये कि आपके लड़ाई-झगड़े का औरों पर भी बुरा असर पड़ सकता है।

भारतवर्ष में गौरैया सब जगह पायी जाती है। यूरोप और अमेरिका में भी इससे कोई देश बचा हुआ नहीं है। इसका आहार विशेषतः अन्न है, इसलिये उन देशों में इसके कारण किसानों को लाखों-करोड़ों की हानि पहुँचती है। कीड़े भी खाती है, पर बहुत कम। जन्म लेने के कुछ दिन बाद तक उन्हें खाने की विशेष रुचि रहती है; पर धीरे-धीरे उनकी मात्रा कम करती जाती है। प्रायः तीन सप्ताह बाद खाली दाना चुगने लगती है। छोटे-छोटे फल, ख़ासकर शहतूत,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी खाती है। किसानों की कमाई चटकर जाने में यह कहीं-कहीं चूहे के भी कान काटती है।

अपने देश में इसकी जो उपजाति मिलती है, उसके नर के सिर का ऊपरी हिस्सा भूरा, और गाल सफ़ेद-से होते हैं। ठोड़ी से छाती के बीच तक एक काली धारी रहती है। परों में कुछ सफ़ेद, कुछ बादामी और कुछ भूरे होते हैं। मादा का रंग भूरा या मटमैला होता है। दोनों की चोंच मोटी होती है—दाना चुगनेवाली चिड़ियों की तरह।

गौरैया साल में कई बार अंडे देती है, पर इसका घोंसला विशेषकर फ़रवरी से मई तक देखा जा सकता है। घोंसला बड़ा बेढंगा होता है। मकान में तो डेरा डालती ही है, पर किसी पेड़ पर या झाड़ी में भी आप इसका घोंसला पा सकते हैं। घोंसले के लिये कुछ नरम या मुलायम चीज़ें चाहिएँ —घास-फूस और काग़ज़ से लेकर रुई तक। यह बड़ी लापर्वाही से घोंसला बनाती है। मादा एक बार पांच-छः अण्डे देती है। वे देखने में सुन्दर होते हैं और उनका रंग कभी हरा, कभी पीला और कभी भूरा रहता है। ऊपर कुछ काली-काली चित्तियाँ होती हैं। माँ-बाप शुरू में बड़े बड़े गुबरैले लाकर बच्चों को खाने के लिये देते हैं। गौरैये के शत्रुओं में एक प्रकार की बड़ी मक्खी है, जो इसीके घोंसले में अण्डे देती है। उसके बच्चे गौरैये के बच्चों के शरीर से चिमट जाते हैं, और कभी-कभी ख़ून चूसते-चूसते उन्हें मार डालते हैं। बाज़ पक्षी और एक प्रकार का बड़ा चमगादड़ भी इसके शत्रुओं में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरैया ज़मीन पर फुदक-फुदककर चलती है। उड़ते समय दोनों डैनों के नीचे सफ़ेद पर नज़र आते हैं। धूल में लोट-पोटकर स्नान करने-वाली चिड़ियों में गौरैया भी है। वह बदन से चिमटे हुए कीड़ों को दूर करने के लिये ही ऐसा करती है।

तूती

इसी जाति की एक चिड़िया और है, जिसे 'तूती' कहते हैं। आपने यह मुहाविरा सुना होगा कि "नक्क़ारख़ाने में तूती की आवाज़!" या यह कि "यहाँ तो किसी और की ही तूती बोलती है।" इसका रंग मादा गौरैये का सा होता है। गले का कुछ हिस्सा पीला होता है। पर इसमें गौरैये का साहस या ढिठाई नहीं होती। बाँस या किसी दूसरे पेड़ के सूराख़ में कटोरे के आकार का घोंसला बनाती है। पर जाड़े के दिनों में ही यह इस देश में पाई जाती है। इसकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है।

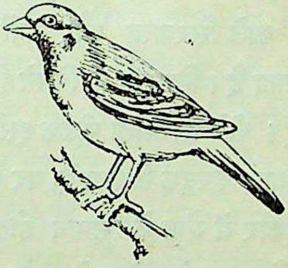

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पीलक

पीलक का दूसरा नाम पीलू है। जिसका सिर काला होता है उसको कहीं ज़रदक और कहीं पहाड़ी टोपीदार पीलक कहते हैं। जाड़े में प्रायः काले सिरवाला और गर्मी में पीले सिरवाला पीलक देखने में आता है। सितम्बर में कितने ही पक्षी उत्तर भारतसे अन्यत्र चल देते हैं। पीले सिरवाला पीलक इसी श्रेणी में है। संयुक्त प्रान्त में उसका स्थान ज़रदक ले लेता है, पर पंजाब में नहीं।

यह पक्षी आकार में मैना के समान होता है। इसके पर पीले और काले होते हैं। नर के डैने काले और चोंच गुलाबी होती है और बाक़ी शरीर पीला। मादा उतनी पीली नहीं होती। ज़रदक के नर और मादा दोनों के सिर, गले और पीठ के ऊपरी हिस्से काले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंग के होते हैं। पीलक के डैने कुछ बड़े और पैर छोटे होते हैं। चोंच छोटी और मज़बूत होती है।

यत बड़ा ही सुन्दर पक्षी है, और इसकी बोली भी बड़ी सुहावनी होती है। कभी-कभी एक ओर से आवाज़ आती है—'यू-हू-आ-यू' तो दूसरी ओर से जवाब मिलता है 'तू-हू-ई'। और भी कई बोलियाँ हैं। इसके नाम से संगीत की पीलू रागिनी का कोई सम्बन्ध नहीं; वास्तव में, पीलक मीठी बोली बोलता है, पर गाता नहीं। इसमें एक गुण यह है कि यह सदा प्रसन्न-चित्त रहता है; कभी मुहर्रमी सूरत बनाकर नहीं बैठता। इसकी बोली विशेषतः मार्च से जूनतक सुन पड़ती है।

पीलक पेड़ से नीचे उतरना कम पसन्द करता है। इसका आहार है कीड़े-मकोड़े और शहतूत या पीपल-पाकर के फल। खेती की दृष्टि से यह उपयोगी और उपकारी पक्षी है। इसके घोंसला बनाने का समय अप्रैल से जूनतक है। घोंसला ज़मीन से प्रायः १२ से ३० फ़ीट की ऊँचाई पर ये बनाते हैं और उसे बनाने में नर और मादा दोनों ही भाग लेते हैं। घोंसला प्रायः तीन इंच चौड़ा और दो इंच गहरा होता है। घास-फूस और पेड़ की छाल के टुकड़ों से घोंसला बनता है। भीतर कुछ नरम चीज़ें भी छिपी रहती हैं। घोंसला देखने में प्याले की शक्ल का और सुन्दर होता है। यह प्रायः उसी पेड़ पर बसेरा करता है, जिस पर भुजंगा या 'कोतवाल साहब' विराजते हैं। अगर उस पेड़ पर जगह न मिली, तो अड़ोस-पड़ोस में रह जाता है। पर भुजंगे की तरह घोंसले को मकड़ी के जाले से नहीं बनाता। जहाँ दुसाखा होता है, वहाँ पहले छाल के टुकड़े को उसके चारों ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लपेट देता है, फिर उसी 'नींव' पर मकान उठाता है। अंडों की संख्‍
प्रायः तीन होती है; कभी-कभी दो या चार भी। रंग सफ़ेद होता
पर उनपर काली चित्तियाँ या बुँदकियाँ रहती हैं। ज़रदक प्रायः स
भारत में पाया जाता है।

पीलक को पीला और तोते को हरा देखकर कभी-कभी य
जानने की इच्छा होती है कि पशु-पक्षियों में रंग-रूप की ऐस
विचित्रता का रहस्य क्या है। वास्तव में, ऐसे प्रश्न का उत्तर देन
विज्ञान के लिये अभी असम्भव है, पर अनुसन्धान हो रहा है—
वैज्ञानिक सत्य की ओर बढ़ते जा रहे हैं—सम्भव है, जो भेद ह
आज नहीं जानते, उसे कल जान जायँ। फिर भी दो-एक बात
का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

प्राणिमात्र को अपनी परिस्थिति के अनुकूल चलना पड़ता है
इस विषय में जो विशेष सफलता प्राप्त करता है, वह संसार में क़ायम
रहता है, और तरक्क़ी करता है, और जो पिछड़ता जाता है, वह
एक दिन मर मिटता है। न जाने, पशु-पक्षियों की कितनी ही
जातियाँ इस कारण नष्ट हो गई कि वे अपने देश-काल की परीक्षा
में उत्तीर्ण न हो सकीं। समय-समय पर पृथ्वी के गर्भ में ऐसे अस्थि-
पंजर मिलते हैं, जिन्हें देखकर आदमी हैरान हो जाता है कि आख़िर
जिन प्राणियों की यह हड्डियाँ हैं, वे कहाँ गये! बात यह है, कि उनमें
उन गुणों का अभाव था, जिनकी सहायता से वे जीवन-संग्राम में
जीत पा सकते। नतीजा यह हुआ कि वे एक दिन मर मिटे।

तोतों को आपने कभी किसी वृक्ष की डाल पर बैठे देखा है?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अगर नहीं, तो अवश्य देखें, फिर यह बात आपकी समझ में सहज ही आ जायगी कि उनके हरे रंग से उनका कितना बड़ा उपकार होता है। हरी पत्तियों के बीच हरे तोते को थोड़ी दूर से भी पहचान लेना कठिन काम है। इसलिये हम कह सकते हैं कि तोते का हरा रंग उसकी प्राण-रक्षा का एक अच्छा साधन है। अनुमान किया जा सकता है, कि किसी समय किसी जंगल में कई तरह के तोते रहते थे। कोई सफ़ेद, कोई पीला और कोई हरा था। इनके शत्रुओं की कमी न थी और तोतों की संख्या दिन-दिन घटती गई। पर जिन तोतों का रंग हरा था, उनमें से अधिकांश बच गये। पत्तों की हरियाली का भ्रम होने से उनके शत्रुओं ने उन्हें पहचाना ही नहीं। बस, उन्हीं हरे तोतों की वंशवृद्धि होती गई और आज-दिन संसार में लाखों-करोड़ों हरे तोते मौजूद हैं। इसी बात को दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि तोतों ने अपनी आत्मरक्षा के लिये अपने को पत्तों के रंग में रंग लिया है।

कुछ जीव अपने अस्तित्व को इस प्रकार छिपाकर अपनी जान बचाते हैं, और कुछ इस विषय में सफल होने के लिये अपनी शक्ति-भर दूसरों का रंग-रूप अपना लेते हैं। आत्मरक्षा के लिये ही पशु-पक्षी ऐसी चाल चलते हों, यह बात नहीं है। कुछ हिंस्र पशु-पक्षी अपने शिकार की नज़र बचाने को, या उसे धोखा देकर उसका संहार करने के लिये भी, अपना रंग-रूप बदल लेते हैं।

अब पीलक की बात लीजिये। भारतवर्ष में तो नहीं, पर मलय-द्वीप-पुंज में इस बात की खोज की गई थी कि इसके रंग का रहस्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्या है । वहाँ का पीलक तमाम एक ही रंग का नहीं है । किसी द्वी
में पीला है, तो किसी में बादामी । कहीं रंग में कुछ फीकापन है,
कहीं चमक-दमक है । पता लगा कि प्रत्येक द्वीप में एक और पक्षी
जिसे हम एक तरह का शकरखोरा कह सकते हैं और उसी के रंग
अनुसार पीलक भी अपना रंग बदलता गया है । वहाँ का यह शकर
खोरा बड़ा ज़बर्दस्त पक्षी है । बाज़ भी उस पर झपटता है, तो सोच
समझकर । ऐसी हालत में पीलक का उसके रंग की नक़ल करन
आश्चर्य की बात नहीं । दोनों के रंग में ही नहीं, आकृति में भ
समानता पाई जाती है । तोता पत्तों में छिप जाता है; पीलक छिपत
नहीं, पर दूसरे का जामा पहन लेता है ।

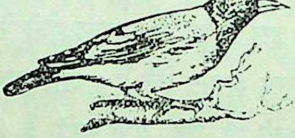

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धोबिन

पक्षी-समाज में जैसे जुलाहा और दर्ज़ी हैं, वैसे ही महरी और धोबिन भी हैं। महरी के विषय में तो कहा जाता है कि वह 'दही-दही' बोलती फिरती है—"दही-दही करि महरि पुकारा"—पर धोबिन नाम क्यों पड़ा, यह बताना कठिन है। जुलाहा (अर्थात् बया) बुनने की कला जानता है और दर्ज़ी सीने-पिरोने की। महरी ग्वालिन-सी 'दही-दही' पुकारती फिरती है, पर धोबिन न तो धुलाई करती है और न गधे की पीठपर बैठी अठिलाती है। इतना ज़रूर है, कि वह अपनी पूँछ को बराबर हिलाती रहती है, इसलिये कपड़े को बार-बार उठाकर पटकनेवाली धोबिन से कोई उसकी उपमा दे, तो इसमें अलंकार-शास्त्र की दृष्टि से, कोई अपराध नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धोबिन इस देश में साल-भर नहीं पाई जाती। जाड़ा यह बिताकर, अंडे देने के लिये, हिमालय की ओर चली जाती है देखने में गौरैये के आकार की सुन्दर चिड़िया है। इसकी लंबा प्रायः आठ इंचतक होती है। इस देश में इसकी दो उपजातिय मिलती हैं। एक का रंग ऊपर कुछ नीला, हरा और भूरा होता है और नीचे पीला। पूँछ का बिचला हिस्सा काला और दोनों छोर सफ़ेद होते हैं। गला भी सफ़ेद होता है। वसन्त काल में नर का गल बीच में बिल्कुल काला हो जाता है। भवें सफ़ेद होती हैं। दूसरी उपजाति का रंग नीचे सफ़ेद होता है। इसके सिर, डैने और पूँछ भी बहुत कुछ सफ़ेद होती हैं। गला कुछ काला होता है, बाक़ी पर भूरे। धोबिन की एक विशेषता यह है कि इसकी पूँछ कुछ लंबी होती है और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह उसे बार-बार हिलाती-डुलाती रहती है।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह साल में कई बार रंग बदलती है। इसका रहस्य क्या है? हमलोग बराबर एक ही वस्त्र पहने नहीं रहते। कभी कुछ पहन कर निकलते हैं, तो कभी कुछ। ऐसे लोग भी हैं, जो दिन भर में कई बार "सूट" बदलते हैं। पक्षियों का भी करीब-क़रीब यही हाल है। किन्तु ये कपड़े का व्यवहार नहीं करते, इसलिये अपने पंख बदला करते हैं। साल में कम-से-कम एकबार तो प्रत्येक पक्षी इस प्रकार पुराने परों को त्यागकर नये धारण करता है। पर कोई-कोई पक्षी साल में यह क्रिया दो बार करते हैं। शीतकाल के आरंभ में सभी पक्षी अपना काया-कल्प करते हैं। प्रायः सात-आठ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुराने पर एक साथ गिर पड़ते हैं, और उनकी जगह नये निकल आते हैं। पर एक बात है। कुछ पक्षियों के सारे पर एक ही रंग के होते हैं, और कुछके रंग-बरंगे। दूसरी श्रेणी के पक्षी ज्यों-ज्यों नये पर धारण करते हैं, त्यों-त्यों उनका रंग बदलता जाता है। धोबिन के विषय में भी यही समझना चाहिये।

धोबिन प्रायः किसी झील के किनारे रहती है। जाड़े के दिनों में कहीं-कहीं झुंड-की-झुंड पाई जाती हैं। सर्द ज़मीन में फिरनेवाले छोटे-छोटे कीड़ों को यह खाती है। सफ़ेद धोबिन का शरीर हलका होता है, इसलिये वह अपने शिकार का बड़ी तेज़ी से पीछा कर सकती है। कभी-कभी किसी मकान के बरामदे में भी चली आती है। बिहार प्रान्त में सफ़ेद धोबिन सितंबर में आती है और अप्रैल के अन्त तक चली जाती है। इसका आहार है, चींटी, फुनगा, ढोला, गुबरैला इत्यादि। किसानों का बड़ा उपकार करती है। पर खेद की बात है कि यह बरसात इस देश में नहीं बिताती। उस समय रहती तो हानिकारक कीड़ों का बहुत-कुछ संहार कर देती। इसकी बोली भी सुहावनी होती है। हिमालय में प्रायः छः हज़ार फ़ीट की उँचाई पर धोबिन अपना घोंसला पत्थर आदि के बीच बनाती है। इसका समय मई या जून है। अंडों की संख्या प्रायः पाँच होती है।

खंजन

खंजन भी धोबिन-जाति की ही चिड़िया है। इसकी उपजातियाँ एक नहीं, अनेक हैं और उनके आकार-प्रकार में बड़ी भिन्नता होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो खंजन साधारणतः इधर पाया जाता है, उसके कुछ पर सफ़ेद और कुछ काले होते हैं। शरीर के नीचे का हिस्सा, भौं और पूँछ के ऊपर के पर तो सफ़ेद होते हैं, और बाक़ी पर काले। मादा नर की अपेक्षा छोटी होती है, और उसकी पीठ काली न होकर भूरी होती है।

यह चिड़िया अपना घोंसला पानी के पास चिड़ियों के पर और घास-फूस इत्यादि से बनाती है। इसका समय मार्च से मईतक है। अंडों की संख्या प्रायः चार होती है, और उनपर बादामी रंग की चित्तियाँ होती हैं।

खंजन निर्जन स्थान में अकेला रहना पसन्द करता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि यह पाला नहीं जा सकता, और जब इसके सिर पर चोटी निकलती है, तब छिप जाता है, किसी को दिखाई नहीं देता।

कहीं-कहीं खंजन को खंडरिच या ममोला भी कहते हैं।

यह बड़ा ही चंचल पक्षी है, इसीलिये अक्सर हिन्दी कविता में नेत्रों की उपमा इससे दी जातो है। जैसे—

'खंजन-नैन रूप-रस-माते;
उड़ि-उड़ि जात निकट स्रवनन के,
उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।'

—सूरदास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्यामा

गानेवाली चिड़ियों में श्यामा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। यों तो यह मनुष्यों के निवास-स्थल से दूर ही रहना पसन्द करती है, पर अपने स्वर को लोकप्रियता के कारण इसे जंगल की आज़ादी से हाथ धोकर प्रेमी के पिंजरे में बन्द होना पड़ता है। कलकत्ते में इसका ख़ासा व्यापार होता है और वहाँ से श्यामा विलायत तक 'चलान' होती है। मगर श्यामा अमीरों के द्वारा ही पाली जा सकती है। इसके कलेवा करने के लिए रोज़ सत्तू और चटपटे कीड़े चाहिए। सत्तू के साथ घी या ख़ूब उबले हुए अण्डे को 'ज़र्दी' ज़रूरी है। पर कीड़ों की समस्या इससे भी कठिन है। कलकत्ते में तो कुछ लोगों का पेशा ही है श्यामा पक्षियों का आहार जुटाना। अपनी दाल-रोटी के लिये ये रोज़ श्यामा के खाने-लायक़ कीड़े और पतंगे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँचा देते हैं। पर अगर किसी कारणवश इनका अभाव हो जाय, तो उसे कच्चे मांस के छोटी-छोटी गोलियाँ बनाकर दी जाती हैं। श्यामा जिस ढंग से पाली जाती है, उसमें बहुत-कुछ सुधार की आवश्यकता है। जिस पिंजरे में लोग इसे रखते हैं, वह साधारणतः बहुत छोटा होता है। फिर वह बराबर कपड़े से ढका रहता है। ऐसे पक्षी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार! अगर इसे क़ैदी बनाकर ही रखना है, तो कम-से-कम इतना तो होना चाहिए कि इसका क़ैदखाना ज़रा बड़ा हो और उसपर वह घटाटोप न हो। कहते हैं कि पिंजरे पर ओहार रखने से यह ऊँचे स्वर में गाती है। पर इससे उस दोष की मार्जना नहीं होती। हमें अपने सुख या स्वार्थ के लिये दूसरे प्राणियों को इस प्रकार सताना नहीं चाहिए।

श्यामा काले रंग की चिड़िया है। पूँछ के कुछ पर सफ़ेद होते हैं। पर मादा नर-जैसी काली नहीं होती। उसकी पूँछ भी उतनी लम्बी नहीं होती। यह प्रायः भारतवर्ष के पहाड़ी हिस्सों में पाई जाती है, यद्यपि विशेष उँचाई पर नहीं। जबतक स्वतन्त्र रहती है तबतक कीड़ों को छोड़ और कुछ नहीं खाती। इसके घोंसला बनाने का समय अप्रैल से जूनतक है। दरख़्त के किसी सूराख़ में घास-फूस इकट्ठा कर बसेरा कर लेती है। अंडों की संख्या साधारणतः चार होती है और वे देखने में दोयल के से जान पड़ते हैं।

श्यामा झगड़ालू है, इसकी औरों से बहुत कम बनती है। मियाँ-बीवी भी एक पिंजरे में साथ नहीं रह सकते!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोयल

जिन चिड़ियों ने मीठा गला पाया है, और गाने के लिये मशहूर हैं, उनमें श्यामा के बाद दोयल का नंबर है। वास्तव में दोनों एक ही जाति के हैं। दोयल देखने में भी बड़ा सुन्दर होता है। अप्रैल से जुलाई तक यह बहुत ही मीठे स्वर में गाता है। जब बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, तब गाना बन्द कर देता है। फिर मार्च में शुरू करता है। आरंभ में, कुछ बेसुरा राग अलापता है, पर थोड़ी ही देर बाद, यह कैफ़ियत होती है, कि संगीत-सुधा बरसाने लगता है।

नर और मादा का संबंध चिरकाल के लिये होता है। आकार में नर बुलबुल से कुछ छोटा होता है। दोयल की पहचान यह है:— सिर, गरदन और छाती का ऊपरी हिस्सा बिल्कुल स्याह, नीचे का हिस्सा सफ़ेद, डैने और दुम स्याह, जिनपर सफ़ेद धारियाँ होती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर कुछ स्याह और कुछ सफ़ेद। जहाँ नर का रंग काला या स्याह रहता है, वहाँ मादा का रंग धूसर या भूरा। इनकी पूँछ प्रायः ऊपर की ओर उठी रहती है। मादा का गला उतना मीठा नहीं होता, जितना नर का। वह उतनी तेज़ भी नहीं होती। दोयल बड़ा चंचल पक्षी है। लड़ने में भी बहादुर है। जिस बाग़ में ख़ुद रहता है, उसमें दूसरे पक्षी को रहने देना नहीं चाहता। सुनते हैं, नेपाल में अमीर लोग इन्हें लड़ाने के लिये पालते हैं।

दोयल का आहार कीड़ा-मकोड़ा है। प्रायः यह आम के बाग़ीचे में मिलता है। आबादी से दूर रहता है, पर कभी-कभी वहाँ भी पहुँच जाता है। मनुष्य से डरता नहीं। बल्कि कभी-कभी तो किसी मकान में ही घोंसला बनाकर डट जाता है।

इसका समय अप्रैल से जूनतक है। घोंसला किसी वृक्ष या दीवार के सूराख़ में घास-फूस और कभी-कभी वृक्षों के पत्तों को जुटाकर बनाता है। कभी-कभी इसका घोंसला कुढंगा होता है। ताल और सुर ठीक करने में शायद इसका इतना समय लग जाता है कि घोंसले की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता। अंडों की संख्या प्रायः चार होती है। देखने में सुन्दर होते हैं और रंग नीला-हरा होता है। ऊपर लाल-लाल बुँदकियाँ रहती हैं।

खंजन से इसकी आकृति मिलती-जुलती है। पर दोयल अपनी पूँछ को प्रायः खड़ा रखता है, और खंजन की तरह इसके सफ़ेद भौं नहीं होती। हाँ, चंचलता में तो उसीके समान है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दामा

यह चिड़िया आकार में दोयल से कुछ छोटी होती है, पर रूप-रेखा दोनों की मिलती-जुलती है। यह प्रायः प्रत्येक गाँव में पाई जाती है। और मनुष्य के घर-आँगन में भी चली आती है।

नर का रंग काला होता है और मादा का बादामी। दोनों की पूँछ के नीचे कुछ कत्थई रंग के पर होते हैं। नर की पीठ बादामी रंग की होती है और डैने में कुछ सफ़ेद पर भी पाये जाते हैं। दोयल की तरह यह रह-रह के अपनी पूँछ ऊपर उठाती रहती है। उस समय उसके नीचे के लाल पर आसानी से देखे जा सकते हैं।

दोयल की तरह इसे छाँह पसन्द नहीं। इसको ऐसी कड़ी या बजरीली भूमि प्यारी है, जहाँ काँटों की कुछ झाड़ी हो। रेलवे लाइन के आस-पास या सूखे हुए नाले में आप इसे देख सकते हैं। यह कीड़े-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मकोड़े खाकर रहती है। इसके घोंसला बनाने का समय मार्च से जुलाई या अगस्त तक है। उस समय नर बड़ी ही सुरीली बोली बोलता है। मादा साल में दो-तीन बार अंडे देती है। इसका घोंसला प्रायः सूखे घास-फूस का बना होता है, पर उसके लिये यह कभी-कभी और सामान भी जुटाती है। चिड़ियों के पर ऊन, रुई, मूँज की चटाई के टुकड़े, जो चीज़ हाथ लग गई, उसीको ले उड़ी। प्रायः प्रत्येक घोंसले में साँप की केंचुल भी मिलेगी। अगर मुहर्रम के दिनों में घोंसला बनाना पड़ा, तो ताज़िया बनाने के लिये जिन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, उनका भी उपयोग कर लेगी—रंगीन कागज और अबरख के टुकड़े से भी अपने मकान को सजा देगी। घोंसलों की सामग्री की तरह उनके स्थान भी विभिन्न होते हैं। कभी तो किसी मकान या मन्दिर-मसजिद की दीवार के सूराख में घर करती हैं, और कभी किसी पजावे में या नदी के कगार में। कभी इसका घोंसला टीन के ऐसे वर्तन में मिलता है, जो कहीं फेंक दिया गया हो। कभी उसके दर्शन काँटों की झाड़ी में होते हैं। एक ही घोंसले में साल-भर रहते हैं। अंडों की संख्या कभी दो या तीन होती है और कभी चार-पाँच या उससे भी ज़्यादा। रंग कुछ हरापन या गुलाबी लिये हुए सफ़ेद होता है, और उनपर बादामी रंग की बुँदकियाँ होती हैं—ख़ासकर चौड़े मुँह के पास। अप्रैल के महीने में जितने अंडे मिलते हैं, उतने और समय नहीं।

दक्षिण में दामा के नर की पीठ बादामी रंग की न होकर काले रंग की होती है; मादा जैसी उत्तर में होती है, वैसी ही दक्षिण में।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

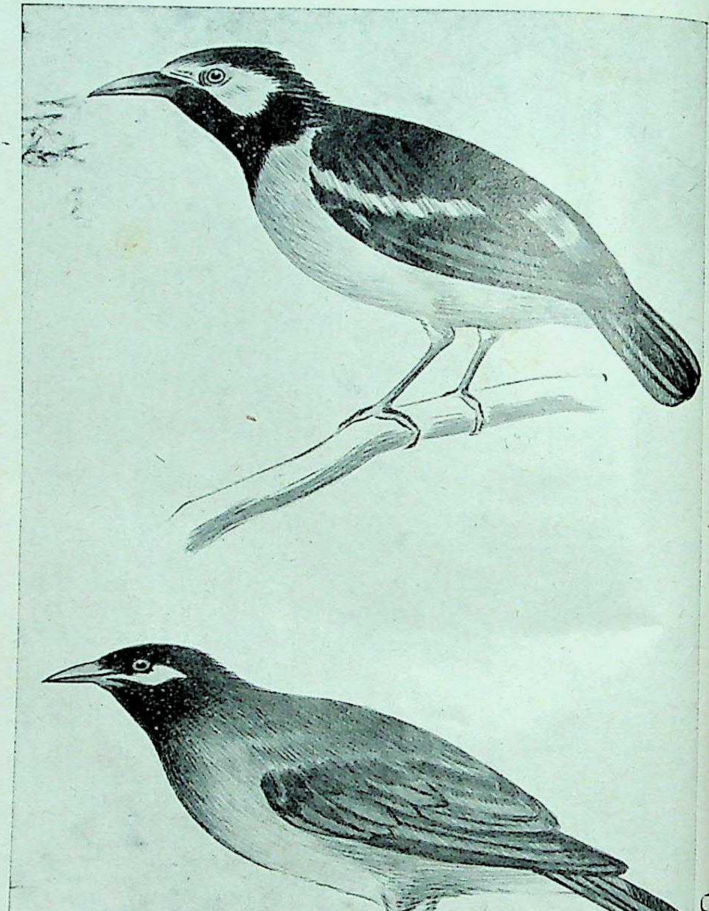

मैना

(१) अबलख (२) देशी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैना

—+*+—

सारौं सुआ जो रहचह करहीं,
कुरहिं परेवा औ करवरहीं।

—"जायसी"

आठ पहर मेरे ढिग रहे। मीठी प्यारी बातें करे।
स्याम बरन औ राती नैना। ऐ सखि, साजन, ना सखि मैना।

—"खुसरो"

मैना बड़ी प्यारी चिड़िया है। रंग-रूप के साथ इसने गुण-गरिमा भी खूब पाई है। अपनी बोली के लिये तो प्रसिद्ध है ही; सिखाने से इसकी कोई-कोई उपजाति मनुष्य की बोली की ऐसी नक़ल कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकती है, कि बिना देखे शायद ही कोई जान सके, कि पक्षी बोल रहा है। पहाड़ी मैना में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है और इसीलिये उसे प्रायः अपनी स्वतंत्रता से हाथ धोकर पिंजर-बद्ध होना पड़ता है।

मैना की कई उपजातियाँ हैं। उत्तर भारत में विशेषतः देशी मैना, दरिया मैना, गुलाबी मैना, तेलिया मैना, अबलख मैना और पहाड़ी मैना मिलती हैं।

देशी मैना

देशी या साधारण मैना देश-भर में पाई जाती है। पहाड़ों पर भी यह जा पहुँची है, और दार्जिलिङ्ग-जैसे स्थान में अब इसके दर्शन होने लगे हैं। पर इस देश की बात जाने दीजिये, अब तो यह विदेशों में भी मिलती है। मारीशस, न्यूज़ीलैन्ड, आस्ट्रेलिया में यहाँ की देशी मैना का वंश-विस्तार हो रहा है। कहीं-कहीं से तो यह रिपोर्ट आई है कि यह बड़ा अनर्थ कर रही है। वहाँ के कुछ ख़ास पक्षी हैं, जिनके अंडों और बच्चों के लिये यह ख़तरनाक साबित होरही है। प्रशान्त महासागर के एक द्वीप में यहाँ से देशी मैना लेजाकर बसाई गई थी। उसने थोड़े ही समय में वहाँ के कबूतरों को निकाल बाहर कर दिया। बाहर जाने से शायद यह कुछ ज़्यादा ढीठ और शरारती बन जाती है। हानिकारक कीड़ों को नष्ट करने के लिये यह बसाई जाती है, पर पीछे स्वयं उत्पात मचाने लगती है।

इसका सिर काला और बाक़ी शरीर बादामी होता है। चोंच

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और पैर पीले। आँखों पीछे की ओर का चमड़ा भी इसी रंग का होता है। डैनों में कुछ पर सफ़ेद होते हैं, जो विशेषकर तभी दीख पड़ते हैं जब वह उड़ती रहती है। यह प्रायः रोज़ हमारे घर, आँगन या अहाते में चुगने आती है; पर ढिठाई में कौए या गौरैये की तरह, औचित्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करती। इसकी चाल-ढाल में भी एक विशेषता है। चुगते समय यह एक-एक पैर बढ़ाकर निराली अदा से चलती है। गौरैये की तरह फुदकते हुए आप इसे न पाइयेगा। हाँ, आवश्यकता पड़ने पर कुछ दूर दौड़ भी जाती है। यों तो इनमें पारस्परिक प्रेम या भाईचारा नहीं होता, पर प्रायः कई साथ मिलकर चुगने निकलती हैं। सत्तर-पचहत्तर तक एक झुंड में देखी गई हैं।

इसकी बोली कानों को अच्छी नहीं लगती। फिर भी पेट भर जाने पर इसे गाने का शौक़ चर्राता है। उस समय इसका हाव-भाव देखकर बड़ी हँसी आती है। परों को फैलाकर सिर हिलाती और गाती जाती है। जैसा कि किसी ने लिखा है—'न ताल है, न सुर है; पर ठाटबाट ऐसा, मानो गाने के पूरे उस्ताद हों।' हाँ, पालने से यह सुहावनी बोली बोलना सीख सकती है।

यह अपना घोंसला प्रायः ऐसे कोटर या सूराख़ में बनाती है, जहाँ पहले कोई कठफोड़वा रह चुका हो। पुरानी दीवारों में भी इनके घर होते हैं। घास-फूस, चिथड़े, डंठल, चिड़ियों के पर और काग़ज़ के टुकड़े—इन्हीं को जुटाकर यह अपना घोंसला बनाती है। पर वह ऐसा बेढंगा होता है कि कहना पड़ता है, मैना इस काम में अनाड़ी है। घोंसला बनाने में समय भी कम नहीं लगता। अप्रैल से मई तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह काम जारी रहता है। अंडे बरसात शुरू होजाने पर दिये
हैं। उनकी संख्या चार होती है और रंग नीला।

देशी मैना बड़ी आन-बान की चिड़िया है। किसीकी
ज़्यादती बर्दाश्त नहीं कर सकती और डील-डौल में कोई
चौगुना भी हो, तो इसे भिड़ते देर नहीं लगती। जहाँ यह
चुगने जाती है, वहाँ दूसरे को देखकर कभी-कभी आग होजाती
और उसे धता बताने लगती है। मानों यह ज़मीन इसकी मौरू
जायदाद हो, और उसमें पैर रखने का किसी भी दूसरे पक्षी
अधिकार न हो! साहस की मात्रा इसमें इतनी होती है कि चील
कौए से भी नहीं डरती और जब पीछे पड़जाती है, तब खदेड़ के
दम लेती है। साथ ही यह झगड़ालू भी बड़ी है और आपस में
इनकी दो-दो चोंचें खूब हुआ करती हैं। इनके लड़ाई-झग
अक्सर बैशाख-जेठ में देखने में आते हैं। वह इनके घोंसला बना
और अंडे देने का समय है। जहाँ एक मादा और तीन-चार न
होते हैं, वहाँ यह प्रश्न उठता है कि वह किसके साथ रहेगी। औ
जब बातों से इसका निर्णय नहीं होता, तब चंगुल और चोंच काम
लाई जाती हैं। कभी-कभी योंही दो नरों की कुश्ती होने लगती है
पंजे से पंजा बँध जाता है और चोंच पर चोंच पड़ने लगती है। शो
मच जाता है, और थोड़े ही समय के भीतर कई दंगल होजाते हैं।

नर ओर मादा का रंग एक-सा ही होता है, पर मादा कुछ छोटी
होती है। दक्षिण भारत की मैना का रंग इधर की अपेक्षा कुछ अधि
काला होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रायः जितने कीड़े इसके लिये खाद्य हैं, वे सभी खेती के लिये हानिकारक हैं। कुछ जंगली फल भी इसे पसन्द हैं। भुट्टे की कच्ची बालों पर इसके आक्रमण होते हैं, पर सब मिलाकर देखा जाय, तो यह किसानों को लाभ ही अधिक पहुँचाती है।

दरिया मैना

दरिया मैना को गंगा मैना भी कहते हैं। देशी मैना से यह छोटी होती है, पर रंग में प्रायः उसी के समान। सिर और गर्दन का रंग काला, बाक़ी शरीर भूरा होता है। चोंच का रंग नारंगी होता है, और आँखों के चारों ओर का चमड़ा लाल।

इसका नाम दरिया या गंगा मैना इसलिये पड़ा है कि यह प्रायः किसी नदी के कगार में अपना घोंसला बनाती है। कच्चे कुएँ में भी कभी-कभी इसका घोंसला मिलता है। इस उपजाति के बहुत से पक्षियों के घर आस-पास होते हैं, जिससे इनका उपनिवेश-सा बन जाता है। बालू या मिट्टी में पहले प्रायः तीन इंच चौड़ा और चार से सात फ़ीट लम्बा आने-जाने का रास्ता खोदते हैं। उसके अन्त में वह कमरा या कोठरी रहती है, जिसमें अण्डे दिये जाते हैं। पर अण्डे योंही मिट्टी पर नहीं दिये जाते। कमरे में घोंसला होता है और उसीमें सारा परिवार रहता है। घास-फूस, चिथड़े, काग़ज़ यह सब तो जुटाते ही हैं, पर इन पक्षियों को घोंसलों में लगाने या बिछाने के लिये साँप की केंचुल ज़्यादा पसन्द है। घोंसला बनाने का समय अप्रैल से जुलाई के बीच तक है। अण्डे नीले तथा चमकीले होते हैं, और उनकी संख्या प्रायः पांच होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुलाबी मैना

गुलाबी मैना बड़ी ही ख़ूबसूरत चिड़िया है। इसके सिर, ग
और डैने बिल्कुल काले होते हैं; पर बाक़ी हिस्सा प्रायः गुला
ज्यों-ज्यों समय बीतता है, गुलाबी रंग चढ़ता जाता है। यह झु
में चलती है, पर साल-भर इस देश में नहीं रहती। जाड़े में
और किसी देश में चली जाती है। इस देश में यह अण्डे नहीं दे
इसलिये इसको घोंसला बनाने की ऐसी कोई ज़रूरत नहीं पड़
यह फ़सल को बहुत नुक़सान पहुँचाती है। पर टिड्डी और टिड्डा
कीड़े भी इसके खाद्य हैं।

तेलिया मैना

तेलिया मैना को तिलोरी भी कहते हैं। "पेडु तिलोरी औ
हंसा"—इस पंक्ति में इस पक्षी का उल्लेख है। इसे तेलिया इसलि
कहते हैं कि इसका रंग काला और चमकीला होता है। पास जाने
कुछ बादामी चित्तियाँ भी नज़र आवेंगी। गुलाबी की तरह यह
झुण्ड में चलती है और साल में कुछ ही महीने इस देश में बिता
है। आप इसे जब यहाँ देखेंगे, जाड़े में। यहाँ इसके घोंसले न
होते। यहाँ से कई हज़ार मील जाकर यह अण्डे देती है। इसक
आहार मुख्यतः कीड़े हैं। गुलाबी की अपेक्षा तेलिया मैना ही इस दे
में अधिक काल बिताती है।

अबलखा मैना

अबलख मैना का नाम अबलखा है—इसका शरीर काला, गा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सफ़ेद और चोंच नारंगी के रंग की होती है। पैर और दुम का रंग कुछ सफ़ेदी लिये हुए होता है। और चोंच का सिरा भी सफ़ेद होता है। यह मैना भी झुण्ड में चलना पसन्द करती है। पर देशी की तरह घर-आँगन में बेधड़क नहीं चली आती। गला मीठा होते हुए भी यह गाती नहीं। कीड़ों का नाश करने में और कोई उपजाति इसकी बराबरी नहीं कर सकती। पर जिस समय सेमल में लाल फूल लगते हैं और उनका मधुपान करने के लिये पेड़ पर पक्षियों का जमघट होता है, उस समय उनके बीच अबलखा भी पाई जाती है। औरों की तरह यह किसी सूराख़ में घर बनाकर नहीं रहती। बरसात शुरू हो जाने पर यह किसी पेड़ की डाल पर अपना बड़ा-सा घोंसला बनाती है। इसका घोंसला घास-फूस, चिथड़ों, परों और टहनियों का बना होता है। कई जोड़े आस ही पास बसेरा करते हैं। इस पक्षी में साहस की कमी नहीं। तभी यह अपने घोंसले को गुप्त रखने की चेष्टा नहीं करती। एक बार में चार-पाँच अण्डे देती है, जिनका रंग नीला होता है। अबलख का अर्थ है कबरा या दोरंगा। इसके शरीर का रंग सफ़ेद और काला होने के कारण ही इसको अबलखा कहते हैं।

पहाड़ी मैना

पहाड़ी मैना वृक्ष पर बसेरा करती है, और केवल फलाहार पर गुज़ारा करती है। देशी मैना की तरह यह चल-फिर नहीं सकती। दुम और डैने छोटे होते हैं। लम्बाई प्रायः एक फुट। चोंच और पैर बड़े न होते हुए भी मज़बूत होते हैं। इसके परों का रंग काला होता है, कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। चोंच का रंग नारंगी का-सा होता है और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आँखें काली। पैर और सिर का चमड़ा पीले रंग के होते हैं।

यह पहाड़ पर ही पाई जाती हो, यह बात नहीं है। बर्मा औ मध्य प्रान्त के दक्षिण-पूर्व भाग में भी यह पाई जाती है। पर अपनी बोली की विशेषता के कारण हम इसे साधारणतः पिंजरे में ही बन्द पाते हैं।

मैना के सम्बन्ध में कितनी ही मनोरञ्जक कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनसे जान पड़ता है कि इसने यहाँ के लोगों के दिल में घर-सा कर लिया है। इसके विषय में अभी बहुत-कुछ लिखना बाकी है, पर स्थानाभाव के कारण हम मैना-रानी से यहीं से विदा माँगते हैं। पर एक प्रश्न करना है। सन्ध्या-समय इन पक्षियों की, अपने परिचित पेड़ों पर, जो सभा बैठती है, उसमें इतने ज़ोर-शोर से ये किन विषयों की चर्चा करते हैं? इसका पता लगाइये और इस पहेली का भी उत्तर दीजिए कि:—

एक नार तरवर से उतरी, सर पर वाके पाँव,
ऐसी नार कुनार को, मैं ना देखन जाँव!

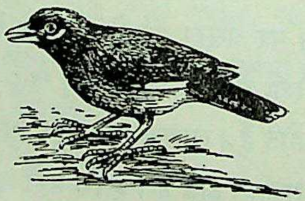

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

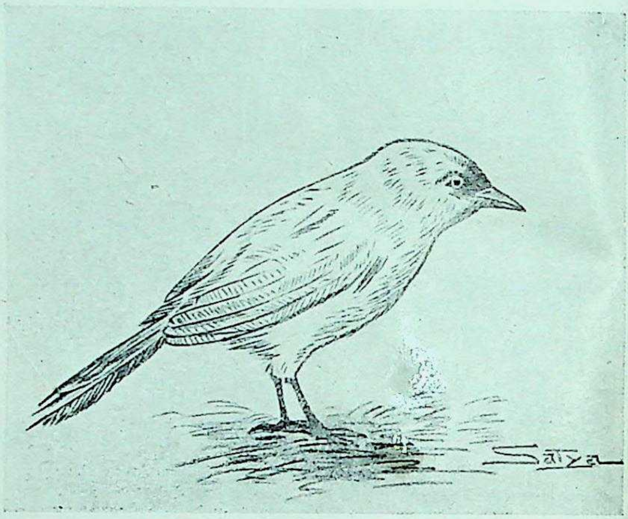

सतभङ्या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सतभइया

जिस पक्षी का हम यहाँ वर्णन करते हैं उसके और भी कई नाम हैं। संयुक्त प्रान्त में उसे कहीं-कहीं पंगिया मैना और बिहार में कचबचिया कहते हैं। झुँड में चलने के कारण आमतौर से ये सतभइया कहे जाते हैं। इनकी संख्या सात ही रहती हो, यह बात नहीं है। कभी आपको छह से ज़्यादा एक साथ न मिलेंगे और कभी एक झुंड में आप बीस तक पायेंगे। बरसों तक सब साथ रहते हैं। साथ ही चुगने जाते हैं और रात को लौटकर साथ ही सोते हैं।

सतभइये का शरीर मटमैला होता है, और आँख, चोंच तथा पैर सफ़ेद। पूँछ बड़ी होती है। देखने में कुरूप-सा लगता है। ऐसा कोई गुण भी नहीं, कि मनुष्यों का प्यारा बन सके। आँखों से शरारत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टपकती है। फिर भी इसके जीवन की कितनी ही बातें मनोरंजक और उनपर प्रकाश डालना आवश्यक है।

पहले तो यही देखिये, कि वह बराबर बोलता रहता है। झुंड झुंड को आप शोर मचाते पायेंगे! पक्षियों की भाषा मनुष्यों की सी नहीं होती। उनकी भाषा में शब्दों की बड़ी कमी है और व्याकरण तो शायद है ही नहीं। हर्ष, क्रोध इत्यादि भावों को प्रकट करने के लिये कुछ ख़ास बोल हैं, और इसी थोड़ी-सी पूँजी से उन्हें दिन-भर काम चलाना पड़ता है। पर जिस प्रकार हम लोगों में कुछ ऐसे होते हैं जो कहीं ज़बान खोलना नहीं चाहते और कुछ ऐसे होते हैं जो मौक़े बेमौक़े बोलते रहते हैं, उसी तरह पक्षियों में भी समझिये। कचबचिया को किचकिच करने में ही आनन्द मिलता है। कभी इसकी ज़बान बन्द नहीं रहती। जो इन पक्षियों के विषय में विशेष जानते हैं, उनका अनुमान है कि झुंड में चलनेवाले पक्षी इस तरह न बोलते रहें, तो सब साथ न रह सकें। जो पीछे रह जाता है, वह बोली सुनकर ही जमाअत में जा मिलता है, इसलिये इनकी 'पार्टी' ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

सतभइयों में भाईचारा काफ़ी होता है। आपस में लड़ते-झगड़ते तो हैं, फिर भी औरों के मुक़ाबिले में एक बने रहते हैं। अगर एक को बाज़ ऊपर से पकड़ ले, तो बहुत सम्भव है कि बाक़ी उसपर टूट पड़ेंगे और अपने भाई को उसके चंगुल से निकालने के लिये कुछ भी उठा न रक्खेंगे। सच्चा सहोदर स्नेह किस कहते हैं यह इनसे सीखा जा सकता है। देखा गया है कि जहाँ एक को पिंजरे से बाहर कर देते हैं, वहाँ उसको आज़ादी अच्छी नहीं लगती और वह क़ैदख़ाने में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही अपने भाइयों के साथ रहने के लिये छटपट करने लगता है। पर एक महाशय कहते हैं, कि इसका कारण प्रेम या सहानुभूति नहीं, बल्कि दूसरे पक्षियों का डर है, अर्थात् सतभइया सोचता है कि अकेला मैं अपनी रक्षा कैसे कर सकूँगा ! जब झुंड में सब साथ चलते थे और एकता का बल था, तब कितने ही पक्षियों से दुश्मनी कर ली थी, अब उनकी चोटों का जवाब कैसे दूँगा ? और यही सोच-विचार कर वह अपने साथियों से अलग होना नहीं चाहता। हमारी समझ से ऐसा कहना इन पक्षियों के प्रति अन्याय करना है। प्रेम की तह में दूसरों का भय भले ही हो; पर इससे प्रेम का ऊँचा महत्त्व कैसे अस्वीकार किया जा सकता है ? सतभइयों से यह तो आशा नहीं की जा सकती, कि वे प्रेम के लिये ही प्रेम करेंगे और जान भले ही चली जाय, पर प्रेम का मार्ग न छोड़ेंगे। पक्षियों को अपना प्राण सब से प्यारा है और उसीकी रक्षा के लिये वे तरह तरह के उपायों का अवलम्बन करते हैं। सतभइया अपने दुश्मनों से डरता है। हम-आप भी डरते हैं। औरों से अपनी जान बचाने के लिये वह अपने भाइयों से हिल-मिल कर रहता है—हम-आप भी रहते हैं या कम-से-कम हमें रहना चाहिये। हमारे जाति-प्रेम की जड़ में हमारा स्वार्थ होते हुए भी वह इतना प्रशंसनीय समझा जाता है। फिर पक्षियों के भ्रातृ-भाव का मूल्य कोई क्यों कर कम बता सकता है ?

सतभइये सिर्फ़ साथ ही रहते हों और एक दूसरे के काम न आते हों, यह बात नहीं है। ऊपर कहा जा चुका है, कि किसी ओर से आक्रमण के समय सब एक हो जाते हैं। पर इनकी एकता, इनकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पारस्परिक प्रीति युद्धकाल में ही नहीं, शान्ति के समय में भी देखने में आती है। अक्सर आपने देखा होगा, कि एक सतभइया चोंच से प्रेमपूर्वक दूसरे का सिर खुजा रहा है या उसके परों को साफ़ कर रहा है। पर आखिर ये पक्षी ठहरे, इनसे महात्माओं के से आचरण की आशा करना व्यर्थ है। स्नेह है, सहानुभूति है, पर पिंजरे में खाने-पीने की कोई चीज़ डाल दीजिये, फिर देखिये इनकी आपस में किस तरह दो-दो चोंचें होने लगती हैं। तमाशा देखना हो तो इनके बीच एक तेलचट्टा डालकर देख लीजिये। पल-भर में शान्ति अशान्ति में बदल जायगी और इनकी आपस में छीन-झपट होने लगेगी।

सतभइया उड़ने में बहुत कमज़ोर होता है। अनुमान है, कि एक उड़ान में शायद आधी मील भी नहीं जा सकता। साधारणतया हम इसे तीस-चालीस गज़ तक जाते देखते हैं। पर इसके पैरों में अच्छी ताक़त होती है, इसलिये फुदकने में बहादुर है। इनकी एकता का एक कारण यह भी हो सकता है कि अपनी रक्षा के लिये उड़कर दूर निकल जाना इनके लिये असंभव है। कभी-कभी आप देखेंगे कि किसी ऊँचे वृक्ष पर जा बैठता है, फिर उड़के दूसरे छोटे वृक्ष पर आजाता है। इस तरह आगे बढ़ता जाता है। डाली पर भी सतभइये फुदकते रहते हैं।

इनका आहार कीड़े-मकोड़े, छोटी-छोटी छिपकलियाँ और मेढक हैं। पूसा में एक बार जाँच की गई तो मालूम हुआ कि कीड़ों के अलावा वहाँवाले गूलर, बेर इत्यादि भी खाते हैं। बच्चों को प्राय झींगुर और गुबरैले लाकर खिलाते हैं। इन्हें झाड़ी-झुरमुट से प्रेम होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उड़ने में कमज़ोर होने के कारण यह ऊँचे वृक्ष पर घोंसला नहीं बनाता। किसी छोटे पेड़ पर पत्तों की ओट में शरण लेता है। घोंसला प्याले की शक्ल का होता है, पर वह ऐसा बेढंगा बना होता है, और घास-फूस और दूसरे सामान इस तरह बिखरे रहते हैं कि दो-एक अंडों का ज़मीन पर गिर पड़ना मामूली सी बात है। इनका घोंसला कहीं-कहीं नीम के पेड़ पर पाया जाता है। उँचाई ज़मीन से कहीं चार और कहीं दस फ़ीट समझिये। कभी-कभी छः जोड़े मिलकर एक ही घोंसला बनाते हैं और उसीमें अंडे देते हैं। मादा एकबार तीन चार अंडे देती है, जिनका रंग सफ़ेद होता है।

जिस तरह कौआ कोयल से ठगा जाता है, उसी तरह सत-भइया पपीहे से। पपीहे का अंडा आकार में कुछ बड़ा होता है, पर रंग में नीला होने के कारण सतभइये की पहचान में नहीं आता; कुछ समय तक बच्चों की भी पहचान नहीं होती। पपीहे के बच्चों की भूख ज़्यादा तेज़ होती है। इसलिये बड़ा शोर मचाते रहते हैं और भ्रम में पड़े हुए सतभइये, उन्हें खिलने-पिलाने में व्यस्त रहते हैं।

गंगई

सतभइये की एक उपजाति का नाम गंगई है। इसका रंग गहरा भूरा होता है, और लंबाई डेढ़ से दो बालिश्त, अर्थात् सतभइये से कुछ बड़ी होती है। यह छोटे-छोटे झुंडों में फिरती है। किसी झाड़ी में घोंसला बनाती है और चार अंडे देती है। बहुत बोलती है। उड़ते समय दो सफ़ेद पर नज़र आते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुदहुद

हुदहुद के सिर पर चोटी या कलगी होती है। इसकी एक कहानी सुनने लायक़ है:—

सुलेमान नाम के यहूदियों के मशहूर बादशाह होगये हैं। कुछ लोग उन्हें पैग़म्बर भी मानते हैं। इन्होंने देवों और परियों को वश में करलिया था, और पशु-पक्षी तक से काम लेते थे। उनका तख़्त भी करामाती था और जब वह चाहते, तब उन्हें ले उड़ता था। एक दिन आप उसी पर बैठे आसमान के रास्ते कहीं जारहे थे। बड़ी तेज़ गरमी पड़ रही थी, और जब आपसे वह बर्दाश्त न होसकी, तब आपने गीधों से कहा कि तुम अपने परों को फैलाकर मेरे ऊपर छाता तान दो, ताकि सूर्य्य की किरणें मुझे सता न सकें। मालूम नहीं क्यों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुदहुद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन गोधों ने जवाब दिया कि जनाब, हमें दूर जाना है, इतनी फ़ुरसत नहीं कि आपके लिये छत्रच्छाया करते चलें। सुलेमान को इस पर बड़ा क्रोध होआया, और उन्होंने शाप दिया कि "तुम्हारी गर्दन बराबर परों से ख़ाली रहेगी, इससे धूप और वर्षा में जब कष्ट पाओगे, तब आजका दिन यादकर पछताओगे। अखाद्य ही तुम्हारे लिये खाद्य होगा—और सब लोग तुमसे घृणा करेंगे।" सुलेमान का शाप पूरा होते देर न लगी और आजतक गीधों की दशा या दुर्दशा में अन्तर न पड़ा। पर उस घटना के बाद ही संयोग से कुछ हुदहुद सुलेमान के तख़्त के पास से गुज़रे और उन्होंने इनसे भी कहा कि तुम अपने परों को फैलाकर सूर्य्यातप से मेरी रक्षा करो। इनके सरदार ने जवाब दिया कि महाराज! हम मुट्ठी-भर की चिड़िया, हमारी बिसात ही क्या, पर हाँ आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। इसलिये हमारी जातिमात्र यहाँ एकत्रित होकर आपकी सेवा करेगी। डीलडौल में तो हम इन गीधों की बराबरी नहीं कर सकते, पर हमारा समाज बहु-संख्यक है, इससे आशा होती है कि आपकी थोड़ी बहुत सेवा हम अवश्य कर सकेंगे।" बात की बातमें सब हुदहुद वहाँ आ पहुँचे और सुलेमान के तख़्त के ऊपर बादलका-सा साया कर साथ-साथ चलने लगे। अपनी आकाश-यात्रा पूरी कर जब सुलेमान घर लौटे और उनका दरबार लगा, तब उन्होंने हुक्म सादिर किया कि हुदहुदों के सरदार को यहाँ हाज़िर करो। और जब वह उनके सामने आ उपस्थित हुआ, तब उन्होंने उससे कहाः—

"तुमने और तुम्हारी जाति ने मेरी जो सेवा की है उसका मैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समुचित पुरस्कार देना चाहता हूँ। बतलाओ, तुम अपनी जाति
के लिये क्या स्वीकार करोगे ?"

हुदहुदों का सरदार घबराहट के मारे कुछ भी निश्चित न
सका। उसने निवेदन किया कि "मुझे अपनी स्त्री और अपने सम
से सलाह-मशविरा करने के लिये एक दिन का समय मिले, फिर
यहाँ उपस्थित होकर इस प्रश्न का उत्तर दे सकूँगा।"

सुलेमान ने कहा—"ठीक है।"

सरदार ने घर लौटकर अपनी स्त्री को सारा क़िस्सा
सुनाया। उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। सारे समाज की स
बुलाई गई और सबके सामने विचारार्थ यह प्रश्न रक्खा गया
सम्राट् से क्या याचना करनी चाहिए ? पर बहुत तर्क-वितर्क के
भी सर्व्वसम्मति से कोई प्रस्ताव पास न हो सका। अपनी-अप
डफली और अपना-अपना राग—बस यही बात उस सभा में देख
में आई। अन्त में सरदारनी ने सरदार को अलग ले जाकर कहा-
"तुम मेरी बात सुनो। दरबार में जाकर अपनी जाति के लि
सोने की कलगी, वर के रूप में, माँग लाओ। फिर तो अपना द
और पक्षियों से कहीं ऊँचा हो जायगा।" उसकी बेटियों ने भी य
बात पसन्द की और कहा कि बस, बादशाह सलामत से यही इन
लेना चाहिए।

सरदार ने दूसरे दिन दरबार में हाज़िर होकर वही वर माँगा
सुलेमान ने पूछा कि इस विषय में आगा-पीछा सोच लिया है य
नहीं ? सरदार ने जवाब दिया कि सब-कुछ सोच लिया है, हम लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को तो सोने को कलगी ही चाहिए। सुलेमान बोले:—"सोने की कलगी तो मिल जायगी, पर तुम बड़ी बेवकूफ़ी कर रहे हो और पीछे पछताओगे। ख़ैर, जब कोई विपत्ति आ पड़े तो आना, जो सहायता हो सकेगी, कर दूँगा।" उसी दम सरदार के सर पर सोने की कलगी दिखाई दी और वह सुलेमान को सलाम कर घर लौटा। वास्तव में कोई भी हुदहुद वैसी कलगी से ख़ाली न रहा। जिसे देखिए, गर्दन टेढ़ी कर चल रहा है और अपने अलौकिक आभूषण का अभिमान कर रहा है। सरदारनी का दिमाग़ तो सातवें आसमान पर जा पहुँचा। वह किसी दूसरे पक्षी को कुछ समझती ही नहीं! कल तक जिनसे दोस्ती थी—अड़ोसी-पड़ोसी का रिश्ता था—आज उन्हें देखती भी है तो नफ़रत की निगाह से! बराबर यह गुनगुनाती रहती है कि:—

मैं सोने की कलगीवाली,
मेरी सबसे शान निराली!

पर, सुलेमान ने जिस बात की ओर इशारा किया था, वह दो ही चार दिन बाद प्रत्यक्ष हो चली। सोने की कलगी तो आफ़त की पुड़िया निकली।

किसी बहेलिये के जाल में एक हुदहुद जा फँसा। उसे सोने की पहचान न थी, पर उसने कलगो की चमक देखकर यह नतीजा निकाला कि यह कोईक़ीमती चीज़ ज़रूर है। उसे सोनार की दुकान पर ले गया और पूछा कि यह कौन-सी धात है? सोनार ने कहा कि यह पीतल है और उसने पीतल के मोल उससे वह कलगी ख़रीद ली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहेलिया रोज़ हुदहुद जाल में फँसा लाता और उनकी कलगियाँ उता-कर उसी सोनार के हाथ बेच देता। एक दिन किसी जौहरी कलगी देखी तो बोल उठा कि कौन कहता है कि यह पीतल है, यह तो ख़ालिस सोना है। और उसने सोने के भाव वह कलगी ख़रीद भी ली फिर क्या था, बात-की-बात में सब जगह यह ख़बर फैल गई कि हुदहुद के माथे पर जो कलगी होती है वह सोने की है, और तमाम लोग हुदहुद की जान के गाहक बन गये। जब इनकी संख्या तेज़ी से घटने लगी तब सरदार और सरदारनी को वैसा वर माँगने का पछतावा होने लगा। पर सुलेमान के अन्तिम शब्दों को स्मरण कर, सरदार ने ढाढ़स बाँधा और निश्चय किया कि उन्हींकी शरण में चलना चाहिए। बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाता हुआ वह फिर उनके दरबार में हाज़िर हुआ और रो-रो कर अपनी बीती कह सुनाई। सुलेमान बोले:—"बेवक़ूफ़, तुमने मेरी चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न दिया, यह उसीका फल है। लोभ ने तुम्हारी विवेक-बुद्धि हर ली और मद ने तुम्हें अन्धा बना दिया। ख़ैर, तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो चुका; अब मैं अपना वर लौटा लेता हूँ। तुम्हारी सेवा के पुरस्कार का स्मारक रहना ज़रूरी है, इसलिये तुम्हारी कलगी तो बनी रहेगी। पर वह सोने की न होकर साधारण परों की होगी।" तभी से हुदहुद ऐसी कलगीवाले होने लगे और उनकी संख्या घटने के बजाय दिन-दिन बढ़ने लगी।

नानी की कहानी को यहीं छोड़कर हम अब वैज्ञानिक दृष्टि से हुदहुद के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आरंभ में ही यह प्रश्न किया जा सकता है कि हुदहुद की व्युत्पत्ति क्या है ?—इस पक्षी का यह नाम कैसे पड़ा ? उत्तर यह है कि इसका नाम इसकी बोली की नक़ल करता है। अगर आप ध्यानपूर्वक सुनें तो आपको इसकी बोली उक-उक-उक-सी सुनाई देगी। कुछ लोगों का क़यास है कि इसीसे इसका नाम हुदहुद पड़ गया है। हुदहुद का रंग एड़ी से चोटी तक एक-सा नहीं होता। पर काले होते हैं जिन पर सफ़ेद धारियाँ होती हैं; और गरदन से आगे का हिस्सा बादामी या कत्थई रंग का। इसकी दो विशेषताएं अपनी ओर ध्यान आकृष्ट किये बिना नहीं रहतीं। इनमें पहली तो इसकी कलगी या चोटी है जिसकी चर्चा ऊपर होचुकी है। साधारणतः यह उसे समेटे चलता है, पर कभी-कभी—मसलन आश्चर्यचकित होने पर—यह उसके परों को फैला देता है। उस समय इसकी कलगी पंखी-सी नज़र आती है। इसकी दूसरी विशेषता इसकी पतली, लंबी, नुकीली चोंच है। उसकी सहायता से यह ज़मीन खोदकर उन कीड़ों को बाहर निकाल लेता है, जो वहाँ छिपे रहते हैं। हुदहुद शाकाहारी या फलाहारी पक्षियों में नहीं है। इसे उदरपूर्ति के लिये कीड़ों-मकोड़ों का शिकार करना पड़ता है और इसकी चोंच वैसे शिकार के लिये ही बनी हुई जान पड़ती है। इसमें उड़ने की शक्ति अधिक नहीं, इसलिये हम इसे प्रायः ज़मीन पर ही पाते हैं। पर यह समझना भूल है कि यह किसी शिकारी चिड़िया के चंगुल में आसानी से फँस सकता है। उड़ने में यह बहादुर भले ही न हो, पर इसमें चुस्ती-चालाकी की कमी नहीं। तेज़ से तेज़ शिकारी चिड़ियों का अनुभव है कि हुदहुद को पकड़ लेना टेढ़ी खीर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुदहुद को अपनी सफ़ाई का बहुत ख़याल रहता है । पर यह कौए की तरह जल का व्यवहार नहीं करता । इसके 'स्नान' करने का तरीक़ा है धूल में लोटना । परों को इस प्रकार धूल-धूसरित करने से वास्तव में इनकी सफ़ाई हो जाती है । कुछ छोटे जीव या कीटाणु अक्सर ऐसे पक्षियों के परों में अपना घर कर लेते हैं और उनका ख़ून चूसा करते हैं । धूल में लोट-पोटकर जब ऐसे पक्षी अपने परों को झाड़ देते हैं तब उनसे कुछ समय के लिये इनका पिण्ड छूट जाता है।

हुदहुद अपने घोंसले के लिये किसी प्रकार का सामान नहीं जुटाते। पेड़ हो या पुराना मकान, जहाँ कहीं काम के लायक सूराख़ मिल गया वहीं बसेरा कर लिया। सूराख़ का मुँह पतला ज़रूर होना चाहिए। यह इसलिये कि कौए जैसे चोर-चाँई अंडे उड़ाने के लिये उसमें न घुस सकें। हुदहुद स्वयं प्रवेश करते समय शरीर को समेट-कर छोटा कर लेता है, इसलिये उसके मार्ग में यह संकीर्णता बाधक नहीं होती । मादा साल में दो बार अंडे देती है—चार से पांच तक। इनका रंग सफ़ेद होता है । अंडे देने के बाद वह शायद ही कभी घोंसले से बाहर निकलती हो । उसे खिलाने-पिलाने का काम उसका पति किया करता है । फ़रवरी-मार्च में—कभी-कभी जनवरी या अप्रैल में भी—हम देख सकते हैं कि नर अपनी चोंच में आहार ले आया और सूराख़ के रास्ते मादा के मुँह में उसे पहुँचाकर फिर कहीं शिकार पकड़ने चला गया । जब अंडों से बच्चे निकल आते हैं तब मादा भी शिकार के लिये जाने-आने लगती है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कबूतर

पटु पांखै, भखु कांकरै, सपर परेई संग ।
सुखी, परेवा ! पुहुमिमैं, एकै तुही बिहंग ॥

—बिहारी

प्रीति परेवा की गनौ, चाह चढ़त आकास ।
तहँ चढ़ि तीय जु देखतहि परत छांड़ि उर स्वास ॥

—सूर

कबूतर मनुष्यों से इस तरह हिल-मिल गये हैं कि उन्हें अपने पास रखने के लिये किसीको पिंजरे की ज़रूरत नहीं पड़ती। दूर-दूर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक चुगने जाते हैं और फिर आप ही अपनी जगह लौट आते हैं। हमारे घर-आँगन में निर्भय और निःशंक होकर घूमते-फिरते हैं, मनमानी चीज़ें चुग-चुगकर खाते हैं। अक्सर हमारे मकान की छतों या कारनिसों में ही सारी उम्र बिता देते हैं—क्या दूसरा भी कोई पक्षी है जो इस विषय में कबूतर की बराबरी कर सके? वृक्षों की शरण लेना कबूतरों को अच्छा नहीं लगता—पालतू कबूतरों के लिए लोग लकड़ी का एक घर तैयार कराते हैं, जिसे 'दरबा' कहते हैं। पर जिन्हें ऐसा घर नहीं मिलता वे मकान की छत या चट्टान की खुली हवा में ही रात गुज़ार देते हैं। बड़े गोष्ठीप्रिय होते हैं। सैकड़ों कबूतरों का एक साथ रहना, उड़ना या विश्राम करना साधारण-सी बात है। कबूतर और फ़ाख़ता एक ही जाति के पक्षी हैं, पर कबूतर का आकार कुछ बड़ा होता है। साधारणतः इसका रंग कुछ नीलापन लिये हुए भूरा होता है। डैनों पर दो काली धारियाँ होती हैं। सूर्य का प्रकाश पड़ने पर इसकी गरदन की चमक देखते ही बनती है। पैर प्रायः लाल होते हैं, कुछ कबूतरों के बैंगनी या पीले भी। आंखों का रंग नारंगी होता है। इसके पैर की बनावट कुछ विचित्र-सी होती है—तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर होती हैं। सिर छोटा होता है, और शरीर भारी। डैने मज़बूत होते हैं। इसकी चोंच कुछ नरम और नाक के ऊपर-ऊपर कुछ फूली हुई-सी होती है। नर और मादा देखने में एक-से ही जान पड़ते हैं।

कबूतर की अनेक उपजातियाँ हैं। इनमें कुछ मशहूर कबूतरों के नाम हैं—गिरहबाज़, गोला, लोटन, लक्का, शीराज़ी, बग़दादी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"आईन-ए-अकबरी" में इनका बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है। अकबर बादशाह को कबूतरबाज़ी का बड़ा शौक़ था । ईरान और तूरान से गिरहबाज़ कबूतर और उन कबूतरों के लिये कबूतरबाज़ मँगाये थे। उसके आदेश से "कबूतरनामा" नामक एक ग्रन्थ भी तैयार हुआ था।

कबूतर उड़ने में बहादुर चिड़िया है। कुछ तो आसमान में बड़े जौहर दिखाते हैं, इसीलिये इनकी दरबारों में इतनी क़द्र होती थी। गिरहबाज़ कबूतर से लोग कभी-कभी चिट्ठीरसाँ का भी काम लेते हैं।

कबूतर को जिस समय बड़ी ख़ुशी होती है, उस समय एक तरह की बोली बोलता है, जिसे "गुटरगूँ" कहते हैं। साधारणतः यह चुप ही रहता है। कठिन-से-कठिन पीड़ा होने पर भी कुछ नहीं बोलता।

कबूतर अपना घोंसला विशेषकर मार्च और अप्रैल में बनाते हैं। पर उनके अण्डे या बच्चे और महीनों में भी मिल सकते हैं । घोंसले के लिये ये प्रायः किसी पुराने मकान या कुएँ का आश्रय लेते हैं। टूटी-फूटी दीवार में एक सूराख इनके लिये बस है। घोंसला घास-फूस या टहनियों से बनाया जाता है, पर उससे कबूतर की कोई कारीगरी नहीं झलकती। मादा एक बार दो सफ़ेद अण्डे देती है। बच्चे देखने में बड़े कुरूप लगते हैं। परों का कहीं नाम-निशान भी नहीं होता। बहुत समय तक घोंसले में ही रहते हैं।

दाना चुगनेवाली चिड़ियों के शरीर के भीतर एक थैली होती है। नाज के दाने पहले वहीं पहुँचा दिये जाते हैं। फिर यथावकाश उनको

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाचन-क्रिया पूरी की जाती है। कबूतर के भी ऐसी ही थैली होती है। आप मुट्ठीभर अन्न किसी कबूतर के सामने बखेर दें तो वह बात की-बात में सबको गायब कर देगा। वास्तव में, वह सब दानों को उसी थैली में रख लेता है। कबूतर की इस थैली से एक प्रकार का दूध निकलता है, और जबतक बच्चे अन्न खाने-लायक नहीं हो जाते तबतक उन्हें यही दूध पीने को मिलता है। और चिड़ियों के बच्चे मुँह खोलकर खाना मांगते हैं, पर कबूतर के बच्चे अपनी माँ की चोंच में अपनी चोंच डाल देते हैं और उसकी थैली का दूध पीकर अपनी भूख मिटाते हैं।

कबूतर प्रायः नाज के दाने चुगकर जीवन-निर्वाह करते हैं, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो केवल फल खाकर ही रहते हैं। दाना न मिलने पर दूसरी चीज़ों की ओर ध्यान देते हैं, जिनमें शायद कंकड़ भी शामिल हैं। बिहारीलालजी के दोहे में "भखु काँकरै" का संकेत कबूतर की इसी आदत की ओर है। सुनते हैं, इसके पेट में एक ऐसी चक्की है जो नाज के दानों के साथ इन कंकड़ों को भी पीस डालती है। कुछ कबूतर, अन्न के अभाव में, छोटे-छोटे घोंघों को ही अपना आहार बना डालते हैं।

ग़रीब कबूतर किसी दूसरे पक्षी से लड़ने-भिड़ने का कभी नाम नहीं लेता। पर मियाँ-बीबी आपस में कभी-कभी झगड़ पड़ते हैं। चोंच कमज़ोर होने के कारण उससे तो अस्त्र का काम नहीं ले सकते, किन्तु परों को खूब फड़फड़ाते हैं। पर इससे यह ख़याल करना कि कबूतरों का दाम्पत्य-जीवन सुखमय या शान्तिमय नहीं होता ग़लत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। वास्तव में इनका पारस्परिक प्रेम देखकर लोगों को इनकी भरपूर प्रशंसा करनी पड़ती है। अक्सर आप देखेंगे, कि नर अपनी विचित्र बोली बोलता हुआ, गला फुलाकर मादा के चारों ओर नाच रहा है। यह उसका प्रेम-प्रदर्शन है।

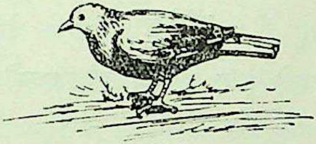

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हारिल

हमारे हरि हारिल की लकरी ।

—सूर

गही टेक छूटै नहीं, कोटिन करौ उपाय ।
हारिल धर पग ना धरै, उड़त-फिरत मरि जाय ॥

—अज्ञात कवि

हारिल कबूतर की जाति का पक्षी है, पर पेड़ से नीचे उतरना या मनुष्य से किसी तरह का रिश्ता जोड़ना नहीं चाहता । कुछ लोगों का ख़याल है कि यह बड़ा अभिमानी है, इसीसे ज़मीन पर पैर नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धरता। कुछ यह समझते हैं कि यह कबूतर की तरह पृथ्वी पर चल नहीं सकता, इससे लज्जित रहता है और नीचे उतरकर अपनी हँसी कराना नहीं चाहता। कारण चाहे और ही हो, पर बात यह ज़रूर है कि हारिल ज़मीन या आबादी को बहुधा दूर से ही सलाम करता है और बिना सख़्त ज़रूरत के पेड़ से नीचे नहीं उतरता।

इसके विषय में कुछ लोगों की यह धारणा है कि यह प्रायः अपने चंगुल में कोई लकड़ी या तिनका लिये रहता है, और कम-से-कम पानी पीने के लिये जब नीचे उतरता है तब उसको लेकर। कहा जाता है, इसे अपने पैरों के गन्दे हो जाने का इतना डर रहता है कि बिना कोई लकड़ी या तिनका लिये यह पृथ्वी का थोड़ी देर के लिये भी संसर्ग नहीं चाहता। पर इसमें कुछ भी सचाई नहीं जान पड़ती। पृथ्वी पर यह बहुत कम देखा जाता है, इसीलिये इसके सम्बन्ध में ऐसी कल्पना-जल्पना चली आती है। शिकारियों से पूछिये, वे कहेंगे कि कभी किसी हारिल के चंगुल में लकड़ी या तिनका नहीं देखा गया। फिर भी अगर कोई महाशय इसे, पानी पीते समय या और कभी, खड़ाऊँ पहने देखें, तो किसी पत्र-द्वारा इसकी सूचना अवश्य दें।

हारिल देखने में सुन्दर होता है। उड़ते समय हरा दीखता है, पर पास जाकर देखिये तो इसके परों में कई रंगों का मेल नज़र आता है। पैर नारंगी, चोंच कासनी रंग की, आँखें नीली होती हैं। आँखों के चारों ओर एक गुलाबी रेखा-सी होती है। डैनों के कुछ पर पीले और काले होते हैं; गरदन और छाती प्रायः पीले रंग की। मादा यों तो नर के समान ही होती है, पर उसके डैने कम नीले होते हैं। हारिल,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारण कबूतर की अपेक्षा, कुछ मोटा होता है। पूँछ, डैने और छोटे होते हैं; चोंच मोटी और मज़बूत। यह अक्सर झुंड में चलता

हारिल पक्का फलाहारी है। पीपल, बड़ इत्यादि के फलों को बहुत ज़्यादा पसन्द करता है। नाज को तो छूना भी नहीं चाहता

यह प्रायः शीशम के पेड़ पर, मार्च से जून-तक अपना घोंसला बनाता है। इस विषय में यह फ़ाख़्ता के समान है और इसका घोंसला बड़ा बेढ़ंगा होता है। वृक्ष ऊँचा होते हुए भी कभी-कभी यह अपना घोंसला ऐसी जगह बनाता है, जहाँ लोगों की नज़र उसपर आसानी से पड़ सकती है। अंडों का रंग सफ़ेद होता है और उनकी संख्या दो होती है।

इसकी आवाज़ कबूतर की गुटरगूँ से नहीं मिलती। हम उसे एक तरह की सीटी कह सकते हैं। कहीं-कहीं हारिल अपने मीठे बोल के लिये पाले भी जाते हैं।

एक हारिल दक्षिणी होता है जिसे हम अक्सर उत्तर भारत में भी पाते हैं। साधारणतः यह पूरब में स्याम-देश और पश्चिम में यमुना नदी, इन्हीं दोनों के बीच मिलता है।

खाने में इसका मांस अच्छा समझा जाता है, इसलिए इसके शत्रुओं की कमी नहीं। न मालूम कितने हारिल रोज़ गोलियों के शिकार होते होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़ाख़ता

नाचहिं पंडुक मोर परेवा,
विफल न जाय काहु कै सेवा।
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ,
जौं चितरोख न दूसर ठाऊँ॥

—जायसी

फ़ाख़ता के और भी कई नाम हैं—जैसे पंडुक, पेंडकी, टुटरूँ, ...ुग्घी। यह छोटी-सी चिड़िया प्रायः हर गाँव में पाई जाती है। आकार ...ं मैना के बराबर होती है और इसका शरीर ललाई लिये भूरे ...ंग का होता है जिससे उस रंग का भी नाम फ़ाख़तई पड़ गया है।

उत्तर भारत में फ़ाख़ता की चार जातियाँ मिलती हैं—चितरोख, ...ोटी, धौरो और सिरोती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चितरोख को शायद चितरवा भी कहते हैं। इसका रंग इट-सा लाल होता है और डैनों पर चित्तियाँ होती हैं। पूँछ कुछ बड़ी है। गरदन के पास कुछ स्याह और सफ़ेद धब्बे-से होते हैं—शतरंज की बिसात का टुकड़ा हो। छोटी फ़ाख़्ता की गरदन के यह बिसात तो होती है, पर उसके डैनों पर चित्तियाँ नहीं हो उनका रंग भूरा होता है। दोनों की बोली में भी अन्तर होता छोटी की बोली ज़्यादा सुहावनी लगती है। फ़ाख़्ता प्रायः कू-तू-तू करती रहती है। इसीलिये एक कवि ने लिखा है कि—

भोर होत बोलहिं चुहचूही
बोलहिं पंडुक—एकै तूही।

इसकी बोली को टुटरूँ-टूँ कहते हैं। धौरी या सिरोती गरदन के पास शतरंज की वह बिसात नहीं होती। धौरी देखने बहुत सुन्दर होती है। इसकी गरदन पर काली धारी होती है जिस इसकी कंठी कह सकते हैं। इसका रंग ज़रा-सा नीला होता है डैनों पर चित्तियाँ नहीं होतीं। चितरोख, छोटी और धौरी के और मादा दोनों एक-से होते हैं, पर सिरोती की बात और उसके नर के डैने लाल होते हैं, बाक़ी पर भी कुछ लालिमा रहते हैं। मादा का रंग बादामी होता है और उसके डैने लाल न होते। पर काली कंठी, नर और मादा दोनों में ही पाई जाती है धौरी की अपेक्षा सिरोती छोटी होती है। इसकी बोली भी अ पंडुकों से बिलकुल भिन्न होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ़ाख़ता दिन-भर क्यों बोलती रहती है ? कुछ लोगों का अनुमान है कि उसे अपनी बोली बहुत प्यारी लगती है और वह उसे बार-बार सुनना चाहती है। वास्तव में कुछ और ही कारण होगा।

फ़ाख़ता कौए या कोयल की तरह साल में एक ही बार अंडे नहीं देती। कोई-कोई तो छः बार देती है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कौए-जैसे लुटेरे उसपर बड़ा अत्याचार करते हैं। मौक़ा पाते ही उसके अंडे उड़ा ले जाते हैं। हाँ, उसके सामने उसकी चीज़ छूने की हिम्मत नहीं पड़ती। फ़ाख़ता यों ही झगड़ालू होती है। उसमें साहस की भी कमी नहीं। कौआ हो या चील हो, जिससे उसे कुछ अहित की आशंका होती है, उसीके पीछे पड़ जाती है और पा जाने पर चोंच से ठुकराये बिना नहीं रहती। फ़ाख़ता एक बार दो अंडे देती है, जिनका रंग सफ़ेद होता है। बार-बार अंडे देने के लिये उसे बार-बार घोंसला बनाना पड़ता है। पर घोंसला बड़ा बेढंगा होता है। लोग उसकी बड़ी हँसी उड़ाते हैं। घोंसला क्या दस-बीस टहनियों की छोटी-सी मचान समझिये। बनावट ऐसी होती है कि नीचे से अंडे साफ़ नज़र आते हैं। यह प्रायः छोटे दरख़्तों पर घर बनाती है। अक्सर इसके घोंसले बबूल के पेड़ों पर मिलते हैं। पर कभी-कभी यह हम लोगों के मकान में भी शरण लेती है।

फ़ाख़ता उन चिड़ियों में है जो केवल दाना चुगकर जीवन-निर्वाह करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोता

सबज रंग औ मुख पर लाली,
उस पीतम गल कंठी काली ।
भाव कुभाव जंगल में होता—ऐ सखी, साजन, ना सखी, तोता।
अति सारँग है, रंग रंगीलो,
औ गुनवंत बहुत चटकीलो।
रामभजन बिन कभू न सोता—ऐ सखी, साजन, ना सखी, तोता।

—"खुसरो"

तोता उन पक्षियों में है, जो प्रायः प्रत्येक देश में पाये जाते हैं इसकी सैकड़ों जातियाँ हैं। भारत में बारह प्रकार के तोते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

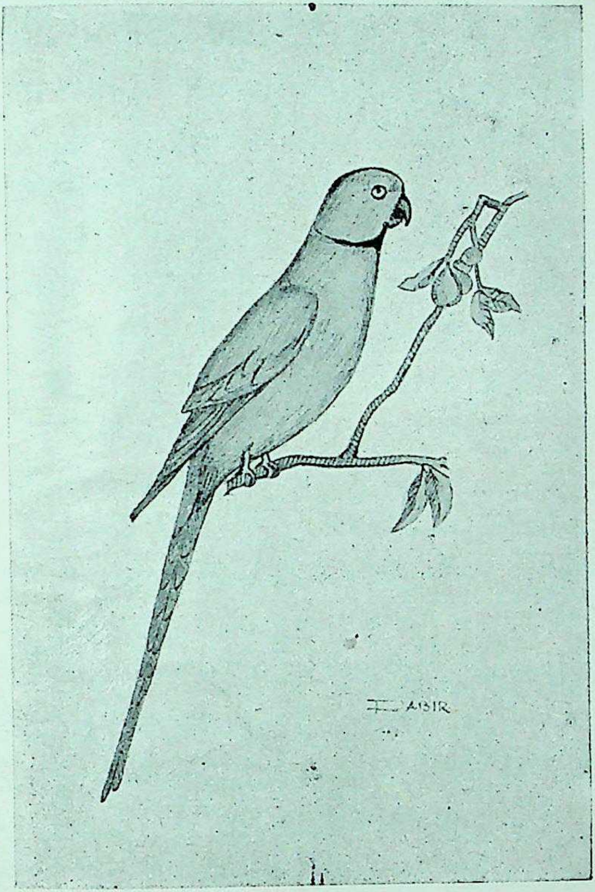

तोता

ष्ठ ८०]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके फिर उन्नीस भेद हैं। उत्तर भारत में एक तो साधारण तोता मिलता है और दूसरा लालसिरा। साधारण तोता बहुत ही सुन्दर पक्षी है। इसके शरीर का रंग हरा होता है, पर ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होगा कि और भी रंग मौजूद हैं। दुम के पर पीले और हरे मिलेंगे; चोंच लाल। ठोड़ी पर काला-सा धब्बा होगा। नर के एक कंठी होती है, जिसका रंग ऊपर गुलाबी और नीचे लाल होता है। नासिका के अग्रभाग से आँख तक एक पतली काली धारी होती है। मादा की गरदन की कंठी हल्के हरे रंग की होती है। लालसिरा साधारण की अपेक्षा कुछ छोटा होता है। नर के सिर का रंग जामुन का-सा होता है, और मादा के सिर का रंग भूरा। दोनो के डैनों में कुछ लाल पर होते हैं। नर के काली कंठी भी होती है। साधारण तोता लंबाई में प्रायः १६ इंच होता है, जिसमें १० इंच की तो केवल पूँछ ही होती है। लालसिरा को टुइयाँ भी कहते हैं। इसकी चोंच लाल न होकर नारंगी रंग की होती है; गरदन का रंग बैंगनी होता है। तोते के पैर में चार उँगलियाँ होती हैं—दो आगे और दो पीछे। भारत के तोते की चोंच छोटी पर मोटी होती है, और मुड़ी रहती है–इसकी जीभ भी मोटी होती है। इसकी एक विशेषता यह है कि यह उड़ना ही नहीं, पढ़ना भी जानता है। तोते प्रायः झुंड में चलते हैं। बहुत तेज़ उड़नेवाले पक्षी हैं। उड़ते समय भी बोलते रहते हैं। साधारण की बोली अधिक कर्णकटु होती है। तोता आदमियों की बोली की अच्छी नक़ल कर सकता है, इसीलिये लोग इसे पालते और रामनाम या छोटे-छोटे पद सिखाते हैं। यह मनुष्यों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मनोरंजन या भगवद्भजन का अच्छा साधन है। "सुआ पढ़ावत गनिका तरि गई" तो प्रसिद्ध ही है। हरसाल हज़ारों पक्षी पिंजरों में क़ैद होते हैं। मनुष्यों की बोली के अलावा यह तरह-तरह के खेल भी सीख लेता है। किसी भी बड़े मेले में आप तोतों के खेल देख सकते हैं। कसरत करते हैं, फ़ौजी क़वायद दिखाते हैं, और छोटी-मोटी तोपें दागते हैं। गोली लगने से कोई-कोई मरकर गिर पड़ते हैं, पर थोड़ी ही देर बाद जी उठते हैं।

शौक़ीन लोग इसकी बोली सुनने के लिये इसे भले ही पालें, अपने रंग-रूप और चालाकी से यह हमारा मनोरंजन भले ही करे, भले ही किसीसे 'राम-राम' रटाकर उसके लिये स्वर्ग का द्वार खुलवा दे, किसानों का तो यह शत्रु है, और हर साल इससे फसल को अपरिमित हानि पहुँचती है। तोता शाकाहारी है, नाज और फल खाकर ही रहता है। पर इसकी ऐसी बुरी लत है कि यह नाज की बाल को ही तोड़ लेता है, और दो-एक दाने खाकर बाक़ी को फ़ेंक देता है। फलों को भी बड़ा नुक़सान पहुँचाता है। फ़रवरी के महीने में सेमल के फूलों के पास तोतों का जमघट लग जाता है। पर हमारे कवियों का कहना है कि वहाँ इन्हें निराशा ही हाथ आती है— "सेमर सेइ सुआ पछिताने" यह कहावत आपने भी सुनी होगी। आसाम में इधर गन्ने की फ़सल पर भी तोते धावा बोलने लगे हैं। अंगरेज़ी में कहावत हैं कि "सुन्दर वही जो सुन्दर कार्य करे," पर इस हालत में हम, खेती की दृष्टि से तो, तोते को सुन्दर नहीं कह सकते, भले ही लोग हमें स्वार्थी कहें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक गाँव या आसपास के तोते प्रायः एक ही वृक्ष पर रात
ते हैं। इनके अंडे देने का समय मार्च से अप्रैलतक है। साधारण
लालसिरा की अपेक्षा पहले अंडे देता है। दक्षिण की ओर
ारण तोते की सन्तानोत्पत्ति का समय जनवरी-फ़रवरी है। यह
-फूस का घोंसला नहीं बनाता। किसी वृक्ष की डाल या दीवार
ना-बनाया सूराख़ मिल गया तो अच्छा ही है, नहीं तो खुद सूराख़
लेता है। सूराख़ करने में कभी-कभी इसे दो-तीन महीने लग जाते
उसका मुँह प्रायः दो इञ्च चौड़ा होता है। दरवाज़ा नीचे की ओर
ा है। सूराख़ के अन्त में एक चार-पाँच इञ्च चौड़ा घर होता
उसमें लकड़ी की कुछ चिप्पियाँ बिछाकर उन्हीं पर मादा प्रायः
, कभी-कभी छः, अंडे देती है। बच्चे बहुत कुरूप होते हैं। उनकी
बहुत छोटी होती है। गले में कण्ठी होती ही नहीं। बचपन में
मनुष्य की बोली आसानी से सीख लेते हैं, इसीलिये चिड़ीमार
बहेलिये बच्चों को पकड़ लाते हैं और उन्हें बेचते फिरते हैं। तोता
नेवाले को एक बात का ध्यान रखना चाहिये। आम तौर से
इसे लोहे के पिंजरे में रखते हैं, क्योंकि लकड़ी के पिंजरे को
चोंच से काट देता है। पर इसके पिंजरे पर कड़ी धूप न पड़े,
व्यवस्था होनी चाहिये, नहीं तो इसे बड़ा कष्ट होता है। लोहा
जाने से यह छटपटाने लगता है।

तोते की कुछ उपजातियों के नाम हैं, हीरामन, नूरी, कातिक,
ातुआ। इनमें काकातुआ वास्तव में आस्ट्रेलिया का निवासी है। इसका
साधारणतः सफ़ेद होता है। सिर पर हल्दी के रंग की चोटी होती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस आदमी में बेमुरव्वती होती है, उसको तोता-चश्म कहते हैं। क्यों ? बड़े तोते की आँख सफ़ेद होती है और बच्चे की काली। पर उसकी आँखों का ज़िक्र करने से क्या मतलब ? बात दरअसल यह है कि कितने ही दूसरे पक्षी पालने के स्थान पर उड़कर चले आते हैं, पर तोता छूट जाने पर नहीं लौटता। मानो उसने नज़र बदल दी—बेमुरव्वती इख़्तियार कर ली—इसीलिये ऐसे आदमी भी तोता-चश्म कहे जाते हैं।

हिन्दी में एक दूसरा मुहाविरा है, तोते की तरह पढ़ना। इसका अर्थ है बिना समझे-बूझे रटना। बालकों को पाठ याद करते समय तोते की तरह नहीं पढ़ना चाहिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थिरथिरा

बहुत से पक्षी पर्य्यटक या प्रवासी होते हैं । कुछ समय एक देश में बिताते हैं, कुछ दूसरे देश में । उत्तर भारत में हम अक्सर देखते हैं कि शीतकाल का आरम्भ होते ही कितने ही तालाब और झीलें ऐसी चिड़ियों से भर जाती हैं जो गर्मी या बरसात के दिनों में नहीं थीं । ये प्रायः तिब्बत की ओर से हिमालय लांघकर इधर आती हैं और जाड़ा यहाँ बिताकर फिर स्वदेश लौट जाती हैं। पक्षियों के इस प्रकार प्रवास करने का कारण क्या है ? कुछ लोगों की धारणा है, कि उत्तर के देशों में सर्दी अत्यधिक पड़ने के कारण ये वहाँ नहीं रह सकते, और भारतवर्ष-जैसे देशों में जाड़ा बिताने चले आते हैं। पर असलियत यह है कि इन्हें पेट पालने के लिये इधर आना पड़ता है। सितम्बर-अक्तूबर के महीनों में उधर कीड़ों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अभाव हो जाता है। अधिकांश तो मर जाते हैं और जो बचते हैं, वे सर्दी से जान बचाने के लिये ऐसे सूराखों या छिप जाते हैं कि पक्षी उन्हें पा ही नहीं सकते। ऐसी हालत उन देशों की शरण लेनी पड़ती है, जहाँ खाने को काफ़ी मिल है। जब वसन्त-काल आता है और ये समझ जाते हैं कि पर कीड़ों की कमी न होगी तब अपने-अपने देश को चल देते

ऐसी यात्राएँ प्रायः बड़ी लम्बी होती हैं। सैकड़ों कोस जाना पड़ता है। ख़याल कीजिये कि जिन पक्षियों को आप काल में यहाँ देखते हैं वे ग्रीष्म-काल में तिब्बत, रूस या ची हवा खाते रहते हैं। इसी प्रकार कुछ पक्षी उत्तर यूरोप से अफ़्रीकातक का—प्रायः छः हज़ार मील का—धावा मारते हैं। पक्षियों के लिये एक उड़ान में डेढ़ सौ कोस पूरा कर देना मा सी बात है। घण्टे में प्रायः बीस कोस उड़ते हैं और सात घण्टे लगातार उड़ते चले जाते हैं। प्रशान्त महासागर के हवाई द्वीप में एक पक्षी अलास्का से उड़कर प्रवास करने आता है; लगातार दो हज़ार मील उड़ना पड़ता है, क्योंकि इसके रास्ते कोई ऐसा स्थान नहीं पड़ता जहाँ यह विश्राम कर सके।

हिमालय के उस पार से यहाँ आनेवाले पक्षी प्रायः ब्रह्मपुत्र धारा का अनुसरण करते हैं, और जहाँ ऊँची चोटियाँ बाधक हैं वहाँ घाटियों के बीच होकर निकल जाते हैं। ऐसे पक्षी प्रायः को सफ़र करते हैं।

सितम्बर में जिन नये पक्षियों का भारतवर्ष हर साल स्वा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता है उनमें एक का नाम थिरथिरा है। यह सितम्बर के लगभग यहाँ आता है और अप्रैल में चल देता है।

जिस समय थिरथिरा इस देश में पहुँचता है, उस समय नर का रंग प्रायः भूरा या मटमैला रहता है, किन्तु पुराने परों के झड़ जाने से कुछ समय बाद इसकी काया-पलट-सी हो जाती है, और अप्रैल में विदा होते समय यह काला दीखने लगता है।

नर काले या भूरे रंग का और मादा बादामी रंग की होती है। पूँछ सबकी प्रायः जामुन के रंग की या बैंगनी होती है। वह बराबर ऊपर-नीचे आती-जाती है। थिरथिरा आकार में गौरैये के बराबर होता है। बोलता बहुत कम है। झाड़ियों में तलाश करने से यह आपको मिल सकता है। इसका आहार कीड़े-मकोड़े आदि हैं, जिन्हें यह ज़मीन पर ही फुदक-फुदककर पकड़ता है। इस देश में यह अंडे नहीं देता। इसलिये इसे यहाँ घोंसला बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

अगर इन पक्षियों से हमारी बातचीत हो सकती तो ये हमें अपनी बीती सुनाकर, हमारी ज्ञानवृद्धि और मनोरञ्जन दोनों ही करते। भूमध्यसागर-जैसे लम्बे-चौड़े समुद्र को कैसे पार किया, हिमालय-जैसे उच्च पर्वत को किस प्रकार लाँघ आये, चाँदनी रात में कैसे सफ़र हुए, क्या-क्या मुसीबतें आईं और उनपर विजय पाकर किस तरह अपने लक्ष्य-स्थान पर जा पहुँचे—इन बातों की कैसी दिलचस्प रिपोर्ट हमें इन चिड़ियों से मिलती और हमारे अखबार-वाले कैसे-कैसे शीर्षक देकर उसे अपने कालमों में छापते!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुलबुल

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह गुलिस्ताँ हमारा ॥

—इक़बाल

बहुत ठीक—मगर जिस बुलबुल की ओर यहाँ इशारा है और जिसके तरानों की इतनी तारीफ़ है वह फ़ारिस में पाई जाती है, इस देश में नहीं। मौलाना आज़ाद उस देश के वसन्त का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"इधर गुलाब खिला, उधर बुलबुल हज़ारदास्तां उसकी शाख़ पर बैठी नज़र आई। बुलबुल न फ़क़त फूल की टहनी पर बल्कि घर-घर दरख़्तों पर बोलती है और चहचहे करती है। और गुलाब की टहनी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुलबुल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर तो यह आलम होता है कि बोलती है, बोलती है, बोलती है—हद से ज़्यादा मस्त होती है तो फूल पर मुँह रख देती है और आँखें बन्द करके ज़मज़मा करते रह जाती है—बाज़ मौक़े पर जब चहचहे करके जोश व ख़रोश करती है तो यह मालूम होता है कि इसका सीना फट जायगा। अहले-दर्द के दिलों में सुनकर दर्द पैदा होता है और जी बेचैन हो जाता है।"

इस देश की बुलबुल भी गाती है और अच्छा गाती है, पर उसमें यह गुण-गरिमा नहीं होती। बुलबुल के रोने-गाने का जहाँ ज़िक्र हो वहाँ समझना चाहिये कि फ़ारिस की बुलबुल की बात है।

यों तो इस देश में बुलबुल की प्रायः पचास जातियाँ पाई जाती हैं, पर इनमें मुख्य दो ही हैं। एक तो साधारण बुलबुल है और दूसरी काँगड़ा या सिपाही बुलबुल। साधारण को गुलदुम भी कहते हैं। गुलदुम का रंग काला होता है, ख़ासकर सिर और चोटी या कलगी का। बाक़ी शरीर उतना काला नहीं होता। दुम के नीचे के कुछ पर खूब लाल होते हैं, और दुम के परों के सिरे सफ़ेद। काँगड़ा बुलबुल देखने में बड़ी ख़ूबसूरत होती है। इसकी पहचान यह है:—छाती सफ़ेद, सिर और कलगी काली और दोनों गालों के कुछ पर लाल और सफ़ेद। गुलदुम की अपेक्षा इसकी कलगी कहीं बड़ो होती है। ठोड़ी और छाती दोनों सफ़ेद होती है और छाती से नीचे एक काली धारी रहती है।

खुले मैदान की अपेक्षा बुलबुल बाग़ या झाड़ी को अधिक पसन्द करती है। इसके पैरों की बनावट कुछ ऐसी है कि यह ज़्यादा चल-फिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं सकती। आप अक्सर देखते होंगे कि बुलबुल जहाँ जा
वहाँ से रह-रह कर ऊपर उड़ती है और फिर उसी जगह
है। कुछ लोगों का ख़याल है कि इसका कारण बुलबुल की
हट है। वह इतनी चंचल है कि अधिक काल तक एक
बैठी नहीं रह सकती; इसलिये ऐसी हरकत करती रहती है।
अधिक सम्भव यह है कि बुलबुल किसी उड़ते हुए कीड़े को
के लिये इस प्रकार उड़ती है।

बुलबुलों की तृप्ति केवल कीड़ों-मकोड़ों से होती हो, यह
है; वे फलाहार भी करती हैं। देखा गया है कि लाल रंग
फल इनके लिये विशेष आकर्षक होते हैं। बंगाल से एक बार
मिली थी कि किसी ज़िले में लालमिर्च और टमाटर की
बुलबुलों ने बड़ा नुक़सान पहुँचाया था। फिर भी हम उनपर
नहीं हो सकते। उनसे हमारा केवल मनोरंजन ही नहीं होता,
भी होती है। वे बहुतकर ऐसे कीड़े खाती हैं जो फ़सल को च
जानेवाले होते हैं। बुलबुलों में बुराई कम, भलाई अधिक है।

पक्षियों में प्रायः देखाजाता है कि नर और मादा का साथ
ही दिनों के लिये होता है। अर्थात् जब सन्तान उत्पन्न करना हो
तब दोनों दम्पति के रूप में रहने लगते हैं। पर घोंसला बना,
दिये गये, बच्चे निकले और उड़ने लगे, इधर इन दोनों का सम्ब
विच्छेद हुआ। नर कहीं जाता रहा और मादा कहीं। कुछ लोगों
ख़याल है कि बुलबुल ऐसे पक्षियों में नहीं है। नर और मादा
का सम्बन्ध चिरस्थायी होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संयुक्त प्रान्त, विहार आदि प्रान्तों में इसके घोंसला बनाने का समय मई से जुलाई तक है, पर दक्षिण में मार्च से ही समझना चाहिये। बुलबुल की इतनी उपजातियाँ हैं कि सबके लिये एक समय होना असंभव है। हाँ, हम कह सकते हैं कि सितंबर के बाद कोई भी बुलबुल घोंसला बनाने का नाम नहीं लेती। इसका घोंसला किसी झाड़ी में या पेड़ पर, ज़मीन से कुछ ही ऊपर होता है। गुलदुम का घोंसला छोटे से प्याले की शकल का होता है। सूखे घास-फूस से इसकी रचना होती है और कभी-कभी इसके अन्दर घोड़े की पूँछ के बाल या ऐसी ही कोई और नरम चीज़ मिलती है। काँगड़ा बुलबुल अपना घोंसला पेड़ पर न बनाकर किसी झाड़ या झाड़ो में बनाती है। वह भी प्याले के आकार का होता है, और उसे बनाने के लिये डंठल और घास-फूस काम में लाये जाते हैं। भीतर नरम चीज़ों का गद्दा-सा होता है और बाहर प्रायः मकड़ी के जाले से जकड़ा रहता है।

बुलबुल एक बार प्रायः तीन अंडे देती है। नर और मादा दोनों ही अंडे सेते हैं। दुम बड़ी होने के कारण इनका सारा शरीर घोंसले के भीतर नहीं आ सकता, कुछ हिस्सा बाहर निकला रहता है। बुलबुल के अण्डों का रंग गुलाबी होता है, और इनपर कई लाल और बादामी धारियाँ या बुंदकियाँ रहती हैं। घोंसला ज़मीन के पास होने के कारण बुलबुलों के बहुत से अंडे नष्ट होजाते हैं। साँप, बिल्ली, छिपकली आदि उनके बड़े दुश्मन हैं। पर बुलबुल इससे हताश नहीं होती। फिर दूसरा घोंसला तैयार करती और नये अण्डे देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यही कारण है कि इतने अण्डे नष्ट होते रहने पर भी बुलबुलों की संख्या घटती नहीं दीखती।

बुलबुलों को कुछ लोग लड़ाने के लिये पालते हैं। आपके गाँव या मुहल्ले में कोई बुलबुलबाज़ हो तो आप इन चिड़ियों की लड़ाई देख सकते हैं। हम लोगों में ऐसे बहुत कम होंगे जो तान भी उड़ाते हों और तलवार भी चलाते हों। पर बुलबुल में दोनों बातें पाई जाती हैं। अर्थात् वह गाती भी है और लड़ती भी है। जो बुलबुल लड़ने में कमाल करती है, उसके लिये कुछ लोग ५००) भी खुशी-खुशी दे देंगे।

हरेवा

इसे हरी बुलबुल भी कहते है। बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। ललाट का रंग नारंगी होता है और गले का नीला। इसका कुछ हिस्सा काला भी होता है ! बाक़ी शरीर हरा—'सर-सब्ज़'—समझिए। नर और मादा दोनों एक-से ही होते हैं, पर बच्चों का सारा शरीर एकसा—प्रायः हरा—होता है। कुछ बातों में यह साधारण बुलबुल से भिन्न-सा लगता है। इसके सिर पर कलगी या चोटी का नामो-निशान भी नहीं होता। इसकी चोंच लम्बी और मुड़ी हुई होती है। पैर और डैना काफ़ी मज़बूत। जीभ लम्बी-सी होती है, जिसे यह तरल खाद्य पदार्थों को चूसने के लिये बाहर निकालता है। फिर भी इसकी और आकृति-प्रकृति को देखते हुए विशेषज्ञों की सम्मति है कि, इसे बुलबुलों की श्रेणी में ही स्थान मिलना चाहिए।

हरेवा, अपने रंग-रूप की मनोहरता के कारण ही विशेष प्रसिद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, यद्यपि यह गाने को—और दूसरे पक्षियों की बोली की नक़ल करने की—भी अच्छी क्षमता रखता है। इसके खान-पान का प्रश्न उतना जटिल नहीं। दूध-रोटी, केला-पपीता-जैसे फल, और चटनी की जगह कुछ कीड़े—बस इनसे ही इसका पालन-पोषण हो सकता है। आवश्यक यह है कि इसके खाने की चीज़ काफ़ी नरम हो। पर एक बात ध्यान में रखने की है। हरेवा शान्त-शिष्ट पक्षियों में नहीं है। स्वभाव में उग्रता ऐसी कि लड़ते-लड़ते मर मिटता है। अगर इसे पालना है तो इसे अकेला ही रखिए। नहीं तो बहुत संभव है, पिंजरे में अशान्ति की आग धधक उठे !

पर कितना अच्छा हो अगर हमारे दिल में यह बात जम जाय कि परतंत्रता पक्षियों को भी खलती है। चाहे कैसे भी पिंजरे में रखिए, बुलबुल की यह फ़र्य्याद कभी बन्द न होगी कि:—

आज़ादियाँ कहाँ अब वह अपने घोंसले की !
अपनी खुशी से आना, अपनी खुशी से जाना।
तड़पा रही है मुझको रह-रह के याद घर की,
तक़दीर में लिखा था पिंजरे का आबोदाना।
क्या बदनसीब हूँ मैं, घर को तरस रहा हूँ !
साथी तो हैं वतन में, मैं क़ैद में पड़ा हूँ।
आई बहार, कलियाँ फूलों की हँस रही हैं,
मैं इस अँधेरे घर में क़िस्मत को रो रहा हूँ !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीलकंठ

कालिह दसहरा बीतिहैं, धरि मूरख, जिय लाज;
दुरयौ फिरत कत द्रुमनिमैं नीलकंठ, बिनु काज !

—बिहारीलाल

नीलकंठ को यदि आपने न देखा हो तो अगले दसहरे के अवसर पर अवश्य देखें। पुण्य के साथ प्रसन्नता भी कम न होगी। उसके परों के रंग देखकर आप दंग रह जायँगे। चमकीली-भड़कीली पोशाक के लिये हमारे राजा-महाराजा मशहूर हैं तो हमारे पक्षी भी कुछ चीज़ें ऐसी रखते हैं कि देखनेवाले देखते रह जायँ और उनका जी न भरे। पर हाँ, उसके परों की बहार देखनी हो तो उसे उड़ते हुए देखिये। बैठ जाने से उस पर पर्दा सा पड़ जाता है और कुछ का कुछ दीखने लगता है। नीलकंठ के रंग में नीला प्रधान होते हुए भी और कई रंगों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मेल है। इसकी सुन्दरता के कारण ही अक्सर इसको जान
ी है, क्योंकि इसके परों को कहीं उपहार-स्वरूप भेजने के लिये
ोज इसे बन्दूक का निशाना बना देते हैं।

क्या ही अच्छा होता यदि नीलकंठ ने सुहावने परों के साथ
वनी बोली भी पाई होती ! नीलकंठ यदि कोकिल-कंठ होता तो
ा कहते कि सोने में सुगन्ध आगई। आँखें इसे देखना ज़रूर चाहती
पर कान इसकी बोली सुनना नहीं चाहते। यह बड़ा झगड़ालू पक्षी
कभी-कभी इनकी गुत्थम-गुत्थी देखते ही बनती है। लड़ाई-झगड़े
समय बड़ा शोर मचाते हैं और संसार को मानो यह शिक्षा देते हैं
रंग-रूप से गुण या कर्म की पूरी पहचान नहीं हो सकती।

नीलकंठ प्रायः ऐसे कीड़े-मकोड़ों का कलेवा करता है, जो फ़सल
नुक़सान पहुंचानेवाले हैं। टिड्डा, झींगुर, ढोला, गुबरैला, चुहिया,
टा मेढक या सांप—ऐसे ही जीवों को इसका आहार समझना
ाहिये। इसकी आदत है कि किसी पेड़ की डाल पर या अन्यत्र यह
र तक—कभी-कभी घंटों—चुपचाप बैठा रहेगा, और ज़मीन पर बड़ी
ज़ नज़र रखेगा। बीच-बीच में दुम हिलाता और कुछ बोलता जायगा।
यों ही शिकार दीखेगा, झपट्टा मारकर उसके पास पहुँच जायगा
ौर चोंच से पकड़कर उसे निगल जायगा। बरसात के अन्त में
क ख़ास तरह का घुरघुरा शाम को बाहर निकलता है। उसकी ताक
में नीलकंठ कभी-कभी बड़ी देर तक बैठा रहता है। इसके आहार
ो देखते हुए हम इसे किसानों का उपकारक कह सकते हैं।

इसके घोंसला बनाने का समय मार्च है। उस समय इसमें बड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फुर्ती आजाती है, और यह शोर भी ज़्यादा मचाता है । नर और मादा दोनों आसमान में तरह-तरह के खेल करते हैं । कभी उड़कर बहुत दूर ऊपर चले जाते हैं और वहाँ से इस तरह नीचे आते हैं कि जान पड़ता है इनके प्राण-पखेरू उड़ गये । पर झट सँभलकर फिर उड़ते हैं और दूसरी ओर चल देते हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि नर और मादा दोनों पास ही पास बैठे हुए हैं, एकाएक नर उड़ पड़ा और दूर चला गया; फिर बड़े वेग से नीचे उतरा और बात-की-बात में मादा के पास आ बैठा । नर और मादा देखने में प्रायः एक-से ही होते हैं।

नीलकंठ अपना घोंसला किसी वृक्ष के कोटर या खोखले हिस्से में या किसी पुराने मकान के सूराख में बनाता है । उसके लिये घास-फूस, चिड़ियों के पर और चिथड़े जुटाता है । भीतर किसी तरह का गद्दा या बिछावन नहीं होता । कहीं-कहीं इसके घोंसले आसानी से नहीं मिलते । पर बिहार में यह बात नहीं है । एक बार प्रायः चार अंडे दिये जाते हैं । इनका रंग सफ़ेद होता है । अंडे सेने में प्रायः १५ दिन लग जाते हैं । जन्म के समय बच्चे अंधे होते हैं और उनके पर भी नहीं होते। पर चेंचें करते रहते हैं और ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं उनकी आवाज़ कर्कश होती जाती है । बीस दिन बाद घोंसले से बाहर निकलते हैं । तबतक माँ-बाप दिनभर कीड़े या पतंगे लाकर उन्हें खिलाते रहते हैं । उन दिनों नीलकंठ का मिज़ाज गरम रहता है । कौए या चील अगर उसके घोंसले के पास से गुज़रें और उसमें अंडे या बच्चे हों तो यह उनकी बुरी तरह ख़बर लेने को तैयार होजाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठफोड़वा

भारतवर्ष में इस विचित्र पक्षी की पचास से अधिक उपजातियाँ हैं, पर बिहार की ओर साधारणतः तीन ही मिलती हैं। इनमें एक की पीठ सुनहले रंग की होती है। डैने भी इसी रंग के होते हैं, पर कुछ काले। आकार में कौए के समान समझिये। छाती सफ़ेद होती है, जिस पर कुछ काले दाग़ या धब्बे पाये जाते हैं। सिर के पास भी इन्हीं रंगों का मेल देखने में आता है। नर के सिर का ऊपरी हिस्सा लाल होता है, पर मादा का काला या चितकबरा। चोटी और आँखें लाल होती हैं। दुम के पर कुछ कड़े होते हैं और नीचे की ओर झुके हुए; रंग काला। चोंच बहुत तेज़ और मज़बूत होती है; जीभ लम्बी। यह विशेषता दूसरी उपजातियों की भी है। बिहार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की ओर मिलनेवाला दूसरा कठफोड़वा क़द में कुछ छोटा होता है, इसकी पीठ और डैने चितकबरे होते हैं। बंगाल में विशेषतः यही उपजाति मिलती हैं । नर की चोटी लाल रंग की होती है और ललाट में कुछ पीले पर होते हैं। मादा का सिर कुछ पीले रंग का होता है। तीसरी उपजाति गौरैये से भी कुछ छोटी होती है। रंग सफ़ेद और बादामी। इसको बौना कहते हैं। यह कभी-कभी झुण्ड में चलता है और वृक्ष की डालों पर जा बैठता है, जो बात दूसरे कठ-फोड़वों में नहीं पाई जाती।

इस पक्षी का नाम कठफोड़वा इसलिये पड़ा कि यह पेड़ या लकड़ी में छेद कर देता है । साधारणतः यह अपनी चोंच से पेड़ों की छाल को छेदता रहता है। छाल पर चोंच की ठोकर लगी, और उसके नीचे रहनेवाले कीड़े-मकोड़े घबराकर, बाहर निकल पड़े। बस फिर क्या था, सीधे इसके पेट में पहुँच गये। इसके पंजे में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। नाख़ून तेज़ होते हैं। यह पंजों के बल से ही पेड़ पर चिपक जाता है और चक्कर लगाता हुआ ऊपर चढ़ता है। चिपकने में इसे अपनी दुम से बड़ी सहायता मिलती है। मुड़ी हुई और कड़ी होने के कारण उस समय यह तीसरे पैर का काम देती है। पंजे के नाख़ून छाल में गड़ गये, दुम स्टूल या कुर्सी-सी बन गई, कठफोड़वा मज़े से चिपका हुआ अपना काम करता जाता है। जीभ इसकी लम्बी होती है और यह उसीकी मदद से कीड़ों को पकड़कर निगल जाता है। चोंच छाल छेदती जाती है और उससे जो शिकार मिलता है, उसे लम्बी और लसदार जीभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गले से नीचे उतारती जाती है । ज़मीन पर यह कूद-कूद कर कीड़े पकड़ता है । इसमें अच्छी तरह उड़ने की शक्ति नहीं है । इसीलिये पेड़ पर उछलता-कूदता चढ़ता है ।

उत्तर भारत में कठफोड़वा मार्च-अप्रैल के लगभग अपने रहने की जगह तैयार करता है, पर और पक्षियों की तरह घास-फूस या वृक्ष की टहनियों से नहीं । पेड़ में सूराख करके ही यह अपना घर बनाता है । अगर कोई बना-बनाया घर अर्थात् वृक्ष का कोटर या खोखला हिस्सा मिल गया तब तो वहीं धूनी रमा देता है, नहीं तो काठ फोड़कर, अपना नाम पूरी तरह सार्थक करता हुआ, रहने का प्रबन्ध कर लेता है । उस समय यह चोंच से चोट-पर-चोट करता है जिसकी आवाज़ दूर तक सुनाई देती है । इस काम में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, कई दिन लग जाते है । पर इसके धीरज की बलिहारी है कि काठ में छेद करके ही छोड़ता है और छेद भी ऐसा गोल और खूबसूरत कि देखनेवाले चकित रह जाते हैं । छेद प्रायः पाँच इञ्च चौड़ा होता है और भीतर प्रायः पाँच इञ्च गहरा । पर अपने घोंसले को यह साफ़-सुथरा नहीं रखता । उससे बड़ी दुर्गन्ध आती है । इसके अंडों की संख्या तीन होती है । घर बनाने और बच्चों का लालन-पालन करने में नर और मादा दोनों का पूर्ण सहयोग रहता है । यह प्रायः आम के पेड़ पर बसेरा करता है । बिहार में आम, लीची, शीशम और शिरीष-जैसे पेड़ों पर पाया जाता है ।

कठफोड़वा देखने में सुन्दर होता है, पर इसकी बोली बड़ी कर्ण-कटु होती है । इस विषय में यह नीलकण्ठ के समान है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब कभी यह ज़मीन पर उतरता है, तब ख़ासकर चींटियों को जीभ से चाटा करता है। कुछ फलाहार भी करता है, पर इसका ध्यान विशेषतः ऐसे कीड़ों की ओर रहता है, जो दरख़्तों को खोखला कर नष्टप्राय कर देते हैं। इसीलिये इसे मनुष्य-जाति के उपकारियों में गिनना चाहिये।

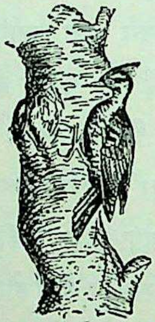

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

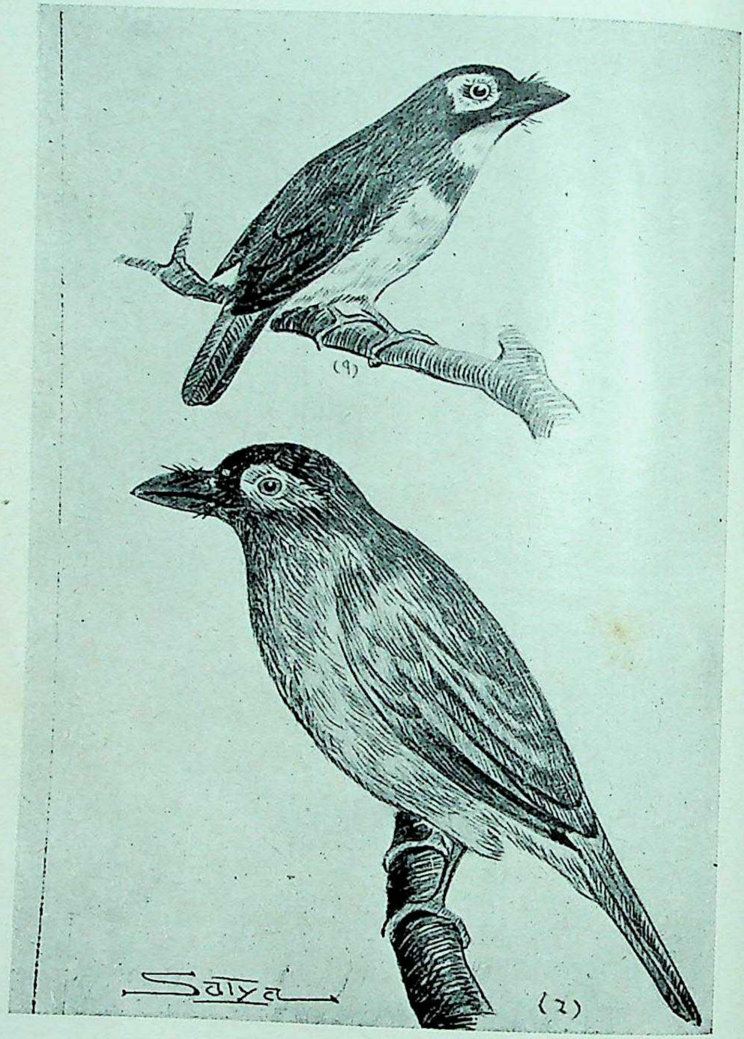

बसन्ता
(१) छोटा (२) बड़ा

पृष्ठ १०१]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बसन्ता

यह एक ऐसा पक्षी है जो देखने में कम आता है, पर बोलता इतना है कि उसीके कारण प्रसिद्ध होगया है। नाम बसन्ता क्यों पड़ा, हम नहीं कह सकते।

सबसे पहले हम उस उपजाति की चर्चा करेंगे, जिसे बड़ा बसन्ता कहते हैं।

इसकी पहचान यह है:—मैना के आकार का हरे रंग का पक्षी; आँखों के पास का चमड़ा नारंगी और सिर कुछ पीला, कुछ बादामी; चोंच कुछ मोटी-सी और प्रायः सिर के रंग की। नर और मादा प्रायः एक-से ही होते हैं। यह पेड़ पर ही समय बिताता है और दिनभर कुटुर-कुटुर करता रहता है। पर इसकी बोली विशेषतः जनवरी से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जून तक ही सुन पड़ती है। बरसात में इसकी आवाज़ में वह बुलन्दी नहीं रहती और जाड़े में तो यह मौन-सा हो जाता है। यह सिन्ध या राजपूताना-जैसे प्रदेशों में नहीं पाया जाता, क्योंकि वहाँ वृक्षों का अभाव-सा है।

छोटा बसन्ता प्रायः गौरैये के बराबर होता है। डैने, पूँछ और शरीर के पर पीलापन लिये हुए हरे होते हैं; और ललाट तथा गरदन लाल। चोंच की जड़ में बिड़ाल की मूँछ को तरह कुछ बाल होते हैं। ठोड़ी, गला और आँख के पास के हिस्से पीले, चोंच काली और पैर लाल होते हैं। पैर में दो उँगलियाँ आगे और दो पीछे होती हैं। यह कठफोड़वे की तरह चोंच से काठ में छेद कर सकता है, पर उसकी तरह पेड़ पर चढ़ नहीं सकता। फुदक-फुदककर डालों पर घूमता फिरता है। इसकी बोली बड़ी विचित्र होती है, मानो ठठेरा तांबे को हथौड़े से ठोक-पीट रहा हो। इसीलिये इसे अंगरेज़ी में "Coppersmith" कहते हैं। सर्दी के दिनों को छोड़ सालभर इसकी 'टक-टङ्ग टक-टङ्ग' बोली आसानी से सुनी जा सकती है। कलकत्ते में इस जाति के पक्षी बहु-संख्यक होते हुए भी साधारणतः दीख नहीं पड़ते। इसका कारण यह है कि एक तो ये वृक्षों के नीचे बहुत कम उतरते हैं, दूसरे इनका रंग हरा होता है, इसलिये पत्तों में इस तरह हिल-मिल जाते हैं कि जल्दी पहचान में नहीं आते।

यह बचपन से ही बोलने लगता है, और बोलने से कभी थकता नहीं। बैशाख-जेठ में कड़ी धूप पड़ रही है, प्यास से सबका गला सूख रहा है, कौए से भी काँव-काँव नहीं किया जाता। पर बसन्ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टक-टङ्ग टक-टङ्ग सुनाता जारहा है। पर ऐसा बकवादी होकर भी छोटा बसन्ता कुछ उदास-सा रहता है, कम-से-कम यह मिलनसार नहीं होता। प्राचीन-काल के तपस्वियों की तरह एकान्तवास करता है, और बोलने के सिवाय और किसी तरह की ज़िंदादिली नहीं दिखाता। एक बात ज़रूर है। चोंच इसने ऐसी पाई है कि काठ में छेद कर सकता है, पर साथ ही शान्त प्रकृति का पक्षी है, लड़ाई-झगड़ा पसन्द नहीं करता—नहीं तो चोंच से ठुकरा कर कितने ही पक्षियों के पेट में छेद कर देता!

छोटे और बड़े—इस जाति के सभी पक्षी विशेषतः फल खाकर रहते हैं। कीड़े खाते हैं, पर बहुत कम। छोटे के विषय में लोगों की धारणा थी कि वह जंगली फल खाकर ही रहता है, बाग़-बग़ीचे के फलों को नहीं छूता, पर यह ग़लत है। लोगों ने उसे, बड़े ही चाव से अमरूद खाते देखा है।

घोंसला बनाने का समय मार्च से जून तक है। बिहार में बड़ा बसन्ता अप्रैल तक यह काम समाप्त कर देता है। उसके लिये यह पेड़ की डाल में चोंच से सूराख़ करता है। घोंसला प्रायः २० फ़ीट या इससे भी अधिक ऊपर रहता है, पर कभी-कभी उँचाई कम भी होती है। उसका मुँह या दरवाज़ा नीचे की ओर रहता है, जिससे बरसात के दिनों में उसमें पानी न भरजाय। प्रायः ऐसी डाल पर डेरा डालता है जो खोखली होती है। यदि उसमें कुछ कमी हुई तो चोंच से सब कुछ ठीक करलेता है। पहले सुरंग-सा रास्ता बनाकर फिर रहने का कमरा बनाता है। सुरंग की लंबाई प्रायः छः इञ्च से दो फ़ीट और चौड़ाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रायः ढाई इञ्च होती है। कमरे की चौड़ाई प्रायः पाँच इञ्च होती है। इसकी चोंच कठफोड़वे की अपेक्षा ज़्यादा मोटी और तेज़ होती है, उसीसे यह सूराख़ तैयार कर लेता है। बड़े के अंडे सफ़ेद-से होते हैं और उनकी संख्या प्रायः तीन या चार होती है।

दो बरस तक कभी-कभी एकही घोंसला काम देता है। बच्चे उड़ने लायक़ होने पर कहीं चल देते हैं, पर माँ-बाप रात को उसी घोंसले में सोते हैं। उत्तर भारत में छोटा बसन्ता मार्च से मई तक घोंसला बनाता है। सुरंग की लंबाई एक से पाँच फ़ीट तक होती है और कमरे की चौड़ाई प्रायः दो इञ्च। छेद करते समय यह पक्षी कठफोड़वे की तरह डाल से चिपका रहता है। इस काम में नर और मादा दोनों ही भाग लेते हैं। घोंसले में घास-फूस बिछाने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। लकड़ी की एक मचान-सी होती है, उसी पर अंडे दिये जाते हैं। इनकी संख्या प्रायः तीन-चार होती है और रंग, शुरू में, गुलाबी—फिर कुछ दिन बाद बिलकुल सफ़ेद। बच्चों का रंग माँ-बाप की तरह गाढ़ा नहीं होता। उनके ललाट में ललाई भी नहीं होती।

कुछ लोग छोटे की टक-टङ्ग टक-टङ्ग सुनते-सुनते तंग आजाते हैं और इसे भला बुरा कहने लगते हैं। पर इसकी बोली कर्कश नहीं होती—यह बहुतों ने स्वीकार किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाल-मुनियाँ

ते अपने अपने मिलि निकसी भाँति भली—
मनु लाल-मुनिन की पाँति पिंजर दूरि चली।

—सूर

लाल या लाल मुनियाँ भारतवर्ष के प्रसिद्ध पक्षियों में है। पहले-पहल यह चिड़िया अहमदाबाद से इंगलैंड भेजी गई थी, इसलिये इसे अंगरेज़ी में "Amdavat" कहते हैं—वास्तव में लाल नर का और मुनियाँ मादा का नाम है।

इसका शरीर भूरापन लिये हुए लाल रंग का होता है। उसपर छोटी-छोटी सफ़ेद बुंदकियाँ होती हैं। ज्यों-ज्यों लाल की उम्र ज़्यादा होती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, त्यों-त्यों उसकी लाली बढ़ती जाती है। यह बहुत ही छोटी चिड़िया है, इसलिये इसकी चोंच मोटी होती है। रेलवे लाइन के पास या खुले मैदान में इसे देख सकते हैं। गुलाब की झाड़ियों में भी यह मिलती है। पेड़ों पर रहना इसे पसन्द नहीं। घोंसला ज़मीन के पास, किसी झाड़ी में, क्रिकेट की गेंद के आकार का बनाती है। अन्दर जाने के लिये सूराख रहता है। घास-फूस जुटाकर यह अपना घर तैयार करती है। पर उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि यह किसी कारीगर का बनाया हुआ है। भीतर कभी-कभी नरम घास का बिछावन भी पाया जाता है। मुनियाँ अपना घोंसला अक्तूबर से जनवरी तक बनाती है और एकबार प्रायः छः अंडे देती है।

लाल मुनियाँ की प्रसिद्धि गाने के लिये है और इसके गुण के कारण लोग इसे पिंजरे में बन्द करके पालते हैं। एक पिंजरे में आप कितने ही लाल पावेंगे। रात को सब-के-सब पिंजड़े के छड़ पर क़तार से बैठकर सोते हैं, और जैसे मेले में कुछ लोग दूसरों को धक्का देकर आगे बढ़ जाते हैं उसी तरह किनारेवाले लाल भी, अक्सर बग़ल के साथियों को ढकेलकर, आप उनकी जगह आजाते हैं। बात यह है कि किनारे सर्दी कुछ ज़्यादा मालूम देती है। इसलिये कोई लाल या मुनियाँ वहाँ सोना नहीं चाहती। प्रत्येक की यही चेष्टा रहती है कि दो के बीच में सोने की जगह पाजाय। और जिसे किनारे रहना ही पड़ता है वह जबतक बीच में न आजाय, तबतक बग़लवाले पक्षी को धक्का देता रहता है। यह धक्कमधक्का प्रायः रातभर जारी रहता है। बीच में से जो पक्षी अपनी जगह से हट जाता है, उसे किनारे जाना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ता है, पर जब उसे सर्दी सताती है, तब वह भी वैसी ही हरकत करने लगता है।

इनके गाने का ढंग निराला है, एक के बाद दूसरे का तराना शुरू होता है और सब मिलकर ऐसा रंग जमाते हैं कि सुननेवाले को "कन्सर्ट" का-सा आनन्द प्राप्त होने लगता है।

इनके बझाने का तरीक़ा यह है कि पिंजरे में तीन-चार लाल-मुनियाँ पहले से ही रख छोड़ते हैं, फिर किसी पटरी पर कुछ दाने बखेर कर और उसमें डोरी बाँधकर कहीं रख देते हैं। बाहरवालों को भ्रम होता है कि दाने योंही पड़े हुए हैं और अपने भाई उन्हें चुग रहे हैं। सो वे भी वहाँ पहुँच जाते हैं। उनके पहुँचते ही डोरी खींच ली जाती है। इससे पटरी उठ जाती है और पिंजरा बन्द हो जाता है।

हरी मुनियाँ

हरी मुनियाँ लाल मुनियाँ की अपेक्षा कम मिलती है। इसका रंग हरा होता है। चोंच लाल रहती है और नीचे के पर पीले। कुछ पर सफ़ेद भी होते हैं। यह सब से छोटी मुनियाँ है।

चरचरा

इस जाति के पक्षियों में सब से साधारण चरचरा है। यह प्रायः झुंड में चलता है और आबादी में भी आता जाता है। रंग मटमैला होता है, और दुम के ऊपर पीठ पर कुछ सफ़ेद-से धब्बे रहते हैं। लाल मुनियाँ की अपेक्षा इसका घोंसला कुछ बड़ा होता है, पर कुढंगा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वैसा ही ! काँटों की झुरमुट में और कभी-कभी कुएँ में भी यह अपना घोंसला बनाता है। साल में मात्र दो बार अण्डे देती है। इसका समय है जनवरी से मार्च और जुलाई से सितम्बर। प्रत्येक बार सात-आठ अण्डे देती है। उनका रंग सफ़ेद होता है।

तेलिया मुनियाँ

सब मुनियों में बड़ी तेलिया मुनियाँ है। इसकी लम्बाई प्रायः पाँच इंच होती है। बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। ऊपर और नीचे के पर बादामी रंग के और सिर, ठोड़ी तथा गला कत्थई रंग के होते हैं। शरीर पर कुछ सफ़ेद बुँदकियाँ भी होती हैं। घोंसला ज़मीन से कुछ ही ऊपर बनाती है और वह देखने में छोटे फुटबाल-सा लगता है।

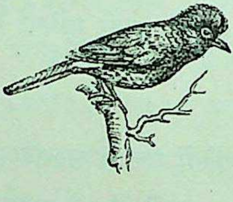

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

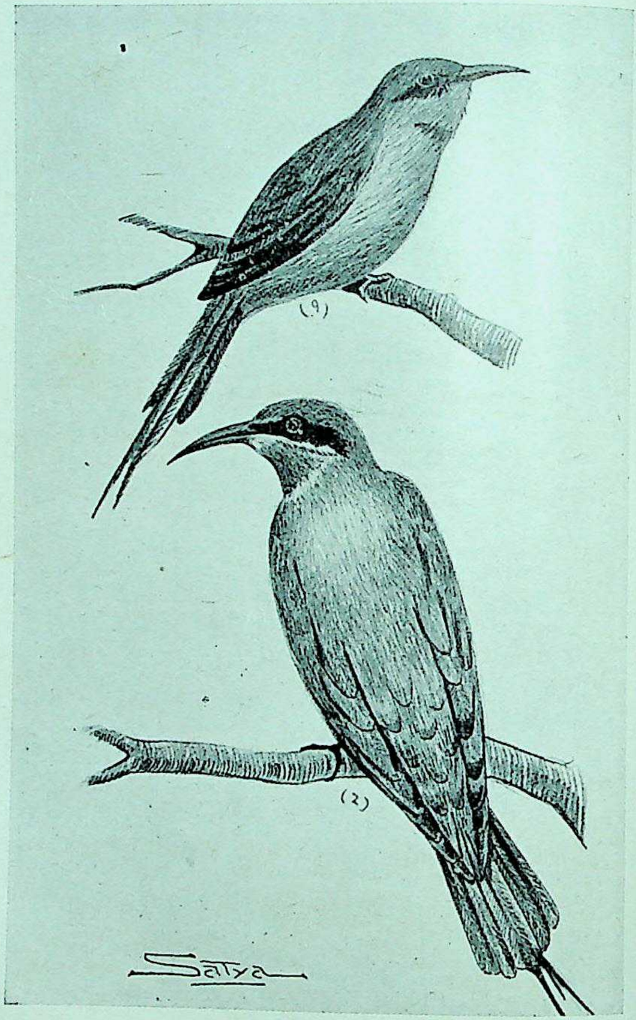

पतरिंगा

(१) साधारण (२) नीलपुच्छ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतरिंगा

रेल से सफ़र करते समय बहुत से पक्षी टेलीग्राफ के तार पर बैठे मिलते हैं। जब से नयी सभ्यता का दौरदौरा हुआ है तब से हम लोग बहुत-सी ऐसी चीज़ों का व्यवहार करने लगे हैं जिनकी कल्पना भी हम कुछ बरस पहले न कर सकते थे। पक्षी अभी प्राचीन-पन्थी बने हुए हैं, पर उनके जीवन या रहन-सहन पर भी नयी रोशनी धीरे-धीरे पड़ रही है और कहीं-कहीं उसका प्रभाव नज़र आ रहा है। चश्मे के सुनहले फ्रेम का कौआ अपने घोंसले में उपयोग करने लगा है और किसी-किसी पक्षी के घर की सजावट डाक के टिकटों से होने लगी है। पर जान पड़ता है कि नये साधनों में पक्षियों के लिये जितना उपयोगी तार सिद्ध हो रहा है उतना दूसरा नहीं। तार से समाचार भेजकर नहीं, बल्कि उसपर बैठकर ही पक्षी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना काम निकालते हैं। नियमित रूप से उसपर आसन जमाने-वालों में भुजङ्गा है, किलकिला है, मछरिया है और है यह पतरिंगा। बहुत ही सुन्दर पक्षी है। आकार में प्रायः गौरैये के बराबर, पर पूँछ बहुत बड़ी; शरीर का रंग विशेषतः हरा, किन्तु ऊपर की ओर कुछ सुनहलापन लिये हुए; ठोड़ी और गाल नीले; गले में काली कण्ठी; चोंच लम्बी, नुकीली और काली; आँखें लाल —यही थोड़े में इसकी पहचान है। इसकी विशेषताओं में मुख्य यह है कि इसकी पूँछ के बीचोबीच दो पर काले, पतले और दूसरों से बहुत आगे निकले हुए होते हैं। जान पड़ता है पूँछ में किसी ने तार के दो लम्बे टुकड़े खोंस दिये हैं। इसकी चोंच की जड़ से आँख तक एक काली धारी कुछ दूर तक जाती है। सुनहले और हरे रंगों का इसके डैनों में कुछ ऐसा मेल है कि उड़ते समय इसका रंग बदलता रहता है, अर्थात् जब सूर्य की किरणें डैनों के ऊपर पड़ती हैं तब तो यह हरा दीखता है और जब वे डैनों के बिचले हिस्सों पर पड़ती हैं, तब यह सुनहला नज़र आता है। यह ढीठ पक्षियों में है, इसलिये आप इसके पास जाकर इसका रंग-ढंग देख सकते हैं। यह उड़ते हुए कीड़ों पतिंगों का शिकार करता है। मधुमक्खियों का यह परम शत्रु है। अंग्रेज़ी में इसका जो नाम है उससे यही सूचित भी होता है। यह नियमित रूप से स्नान करनेवाले पक्षियों में है और इसका ढंग हुदहुद-जैसा है। धूल में बैठकर परों को फड़फड़ा देता है, जिससे उसका तमाम बदनमें प्रवेश हो जाता है और रक्त चूसनेवाले कीड़ों से इसे छुटकारा मिल जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पतरिंगा अपना घोंसला किसी पेड़ पर नहीं बनाता, या तो किसी चट्टान या टीले में या किसी नदी के कगार में या बाँध में सूराख़ करके अपना घर बना लेता है। दरिया मैंना भी आपको याद होगा कि इसी प्रकार सूराख़ करके रहती है, पर इतना फ़र्क ज़रूर है कि पतरिंगे के घर में जाने का सूराख़ बहुत छोटा होता है। इसकी चौड़ाई प्रायः दो इञ्च होती है और घर या घोंसले की प्रायः चार इञ्च। वह गोलाकार होता है।

मार्च या अप्रैल के महीने में अगर आपको इसका ध्यान रहा तो बहुत सम्भव है आप इसे चोंच और पञ्जे से घर तैयार करने के लिये मिट्टी खोदते देख पायँगे। तीन से छः फ़ीट गहरी मिट्टी खोदकर नर और मादा अण्डे देने की जगह तैयार करते हैं। अण्डों की संख्या तीन-चार से छः-सात तक होती है और उनका रङ्ग सफ़ेद होता है। प्रायः जितने पक्षी ऐसे सूराख़ों में रहते हैं, उनके अण्डे सफ़ेद होते हैं। इसका विशेष कारण है। सफ़ेद न हों तो अँधेरे घुप में ये अपने अण्डों को न देख सकें और उनकी जैसी सेवा करनी चाहिए, न कर सकें। अण्डे सेने का अर्थ है उन्हें यथेष्ट गरमी पहुँचाना, और अगर इसमें त्रुटि हुई तो अण्डे निष्फल जायँगे, उनसे बच्चों की उत्पत्ति न हो सकेगी। बच्चे प्रायः माँ-बाप के ही समान होते हैं, पर उनकी पूँछ के बीच में दोनों लम्बे पर नहीं होते।

पतरिंगा सालभर एक ही स्थान में नहीं रहता। जाड़ा कहीं बिताता है, गरमी कहीं। जहाँ यह पक्षी सालभर नज़र आता है वहाँ भी यही बात है, अर्थात् जिसको आज आप देख रहे हैं वह कल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं था और बहुत सम्भव है कि कुछ दिन बाद वह भी कहीं चल देगा। बस आते-जाते रहते हैं। इसकी एक उपजाति है जो एशिया और अफ्रीका से पश्चिमोत्तर प्रदेश में आती है और वहीं अण्डे देती है। दूसरी उपजाति है जो मई-जून में अफ्रीका से आकर पञ्जाब और कश्मीर में घर बनाती है। आम तौर से यह कहा जा सकता है कि इस देश में इनका जाड़ा दक्षिण में बीतता है और गरमी उत्तर में। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश से यह सितम्बर में और उत्तर बिहार से यह अक्तूबर में विदा ग्रहण करता है। उड़ते हुए कीड़ों को पकड़ने के लिये इसे ऐसी आबोहवा चाहिये जो खुश्क हो। सर्दी और बेहद गरमी दोनों से ही यह बचना चाहता है।

जिस समय यह चोंच में किसी कीड़े को धर दबाता है, उस समय ऐसी आवाज़ होती है जो कई गज़ पर सुनाई देती है। छोटा कीड़ा हुआ तो यह उसे एक ही ग्रास में निगल जाता है, नहीं तो उसके अंग भंग करके खा जाता है।

इसकी सुन्दरता की बात ऊपर कही जा चुकी है। इसकी बोली भी सुहावनी है। पर मनुष्य की दृष्टि से इसमें एक बड़ा दुर्गुण है। यह मधुमक्खियों को चट कर जाता है। पूसा में कई बार यह उनका संहार कर चुका है। पतरिंगों का बस चले तो रोगी या निरोगी किसीको रत्तीभर भी शहद न मिल सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शकरखोरा

यह बहुत ही छोटी चिड़िया है, आकार में गौरैये की भी बराबरी नहीं कर सकती, पर इसके रंग-रूप की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। संसार में ऐसे पक्षी कम हैं जो हमारी आँख और कान दोनों के प्यारे हों, पर शकरखोरा उनमें स्थान पाने के सर्वथा योग्य है। नर और मादा का रंग एक नहीं होता; मादा के ऊपर के पर कुछ हरापन लिये हुए मटमैले और नीचे के पर कुछ पीले होते हैं। नर का रंग पीला या बैंगनी होता है। जिस समय वह छाँह में रहता है, उस समय काला-सा दीखता है, पर धूप में कभी हरा, कभी नीला नज़र आता है। दूर से उसका रंग "ब्लू ब्लैक" स्याही-सा दीखता है। सन्तान हो जाने के बाद नर भी बहुत कुछ मादा की भाँति होजाता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसीसे कुछ लोगों का कहना है कि शकरखोरा जब विवाह करने जाता है, तब रंगरूप सँवार लेता है। विवाह हुआ, घोंसला बना, अंडे दिये गये, बच्चों से घर भर गया। अब उस सज-धज की कोई ज़रूरत नहीं रही, इसलिये उसने अपना रंग बदल दिया। उसकी चोंच लम्बी और नुकीली पर कुछ मुड़ी हुई होती है। जीभ की उपमा पतली नली से दी जा सकती है। इसे शकरखोरा इसलिये कहते हैं कि यह फूलों का रस चूसनेवाली चिड़िया है। बंगाल में इसीलिये इसका नाम मधुपायी पड़ा है। भ्रमर की तरह यह भी मधु का चाखनहार है और इ०.की चोंच और जीभ इस काम के लिये बहुत उपयुक्त हैं। फूल में अपनी तेज़ चोंच से छेद करके मधुपान करता है। पर मीठी चीज़ ही नहीं खाता; मीठी बोली भी बोलता है। इसका समय जनवरी से अगस्त तक है। इसीलिये ऊपर कहा गया है कि यह जिस तरह हमारी आँखों को भाता है उसी तरह हमारे कानों को भी।

शकरखोरा प्रायः फूलों के पास पाया जाता है। कभी-कभी इसे चूसने के लिये बैठने को जगह नहीं मिलती, इसलिये इसने ऐसा अभ्यास कर लिया है कि उड़ते-उड़ते अपनी तृप्ति कर लेता है। जिस समय सेमल के वृक्ष में फूल लगते हैं उस समय कुछ पक्षियों का उनके पास महामहोत्सव होता है। अगर आप ध्यान-पूर्वक देखेंगे, तो संभव है उस सम्मेलन में इस पक्षी को भी पावेंगे। इस प्रकार मधुपान करने के कारण कुछ लोग कह सकते हैं कि शकरखोरा लुटेरा है, पर वास्तव में वह जो कुछ लेता है, उसके बदले में कुछ देता भी है। आपको शायद मालूम होगा कि फल की उत्पत्ति, फूल के पराग और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्री-केशर के संयोग से होती है। शकरखोरा मधुपान करते समय फूल में ऐसी जगह छेद करता है कि उसका कुछ पराग उसकी चोंच में लगजाता है, और जब वह उड़कर दूसरे फूल पर धावा बोलता है तब उस पराग को उस फूल के स्त्री-केशर तक पहुँचा देता है। इस प्रकार फल और बीज की सृष्टि होती है और शकरखोरा उस पौधे के वंश-विस्तार का साधन बन जाता है। पौधों की यह सेवा मधुमक्खियाँ भी करती हैं, पर कुछ जीव ऐसे भी हैं जो फूलों का रस तो ले लेते हैं, पर किसी प्रकार की सेवा या हितसाधन नहीं करते। उदाहरण के लिये हम हड्डे का नाम ले सकते हैं। यह फूल में ऐसी जगह सूराख करता है कि मधु तो पाजाता है, पर पराग को छूता तक नहीं। डाका डालनेवालों में इन्हींकी गिनती होनी चाहिए। पर यह समझना भूल है कि शकरखोरा ख़ाली मधुपान करके ही जीता है। उसके आहार में कीड़े-मकोड़े भी शामिल हैं। उनका शिकार कभी तो ज़मीन पर, कभी उड़ते हुए करता है।

भारतवर्ष में इसकी कोई २५ उपजातियाँ मिलती हैं। बिहार प्रान्त में सबसे अधिक बैंगनी रंगवाली उपजाति पाई जाती हैं। यह प्रायः अकेला रहता है, पर बरसात में कभी-कभी दस-बारह एक ही पेड़ के पास नज़र आते हैं। घोंसला बनाने का समय फ़रवरी से अगस्त तक है। पर बिहार को छोड़कर उत्तर भारत के प्रान्तों में शायद मई से पहले यह घर नहीं बाँधता।

इसका घोंसला किसी डाल या टहनी से लटकता रहता है। उसे देखकर बया के घोंसले की याद होआती है। उसके लिये यह तरह-तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के सामान जुटाता है। घास-फूस, पत्ते, लकड़ी, छाल, चिथड़े, काँटे, काग़ज़, कपड़ा—-इनके अलावा किसी-किसी घोंसले में ब्लाटिङ्ग पेपर और स्टाम्प भी मिलते हैं। पहले मादा कुछ मकड़ी का जाला लाकर उसे डाल में लपेट देती है, फिर उसमें कुछ घास-फूस जोड़कर आगे बढ़ती है। घोंसला आकार में मुट्ठी के बराबर होता है, और उसके भीतर कभी-कभी सेमल की रुई का बिछावन भी मिलता है। देखने में सुन्दर लगता है। कभी-कभी यह अपना घोंसला दीवार की कारनिस में बनाता है। घोंसला बनाने या उसके बाद अंडे सेने का काम शायद मादा को करना पड़ता है। नर या तो गाता या फूलों का रस पीता रहता है।

शकरखोरे का घोंसला बहुत ऊँचाई पर नहीं होता। यों तो उसमें साहस की कमी नहीं—मौक़ा पड़ने पर वह बड़े-से-बड़े पक्षी से भिड़ जाने को तैयार रहता है, पर सांप, कौए और गिलहरियाँ उसके अंडों को बहुत नष्ट करती हैं। फिर भी शकरखोरों की संख्या घटती नहीं दीखती। इसका मुख्य कारण यह है कि मादा साल में दो-तीन बार अंडे देती है। उनका रंग दूध-जैसा रहता है और उनपर कुछ बादामी चित्तियाँ होती हैं। प्रत्येक बार मादा दो, कभी-कभी तीन अंडे देती है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाबुना

बाबुना झुंड में चलनेवाली छोटी चिड़िया है, जो गले में ज़ोर न होते हुए भी बराबर बोलती रहती है। इस तरह बोलकर ही ऐसी चिड़ियां झुंड में साथ रह सकती हैं। मालूम नहीं कहती क्या हैं? शायद प्रत्येक चिड़िंया साथियों से कहती रहती है कि चिन्ता की कोई बात नहीं!

आकार में यह प्रायः मनुष्य की बिचली उंगली के बराबर होती है। इसका रंग कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। सिर, ठोड़ी, गला, पीठ, कंधे—सभी पीले होते हैं। और आँखों के चारों ओर सफ़ेद परों की धारी-सी होती है, जिस कारण अंगरेज़ी में इसे चश्मा-वाली चिड़िया कहते हैं। पूंछ और डैने बादामी रंग के होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पौ फटते ही यह चिड़िया बाग़ में पहुँच जाती है और अपना शिकार शुरू कर देती है। यह पत्तों पर के छोटे-छोटे कीड़ों को ही मुख्यतः खाती है, पर कभी कभी फल-फूलों की ओर भी ध्यान देती है। फल तो क्या छोटी-छोटी कलियों से ज़रूर प्रेम रखती है। आम और अमरूद की फ़सल को इससे कभी-कभी नुक़सान पहुँचता है, पर बहुत कम। फिर इसकी ओर से यह कहा जा सकता है कि हानिकारक कीड़ों का नाश कर यह उन फलों का दाम पाई-पाई चुका देती है।

स्थानानुसार यह जनवरी से सितम्बर तक घरबारी रहता है। पर साधारणतः इसका समय अप्रैल का आरम्भ है। उत्तर विहार में यह अप्रैल से जुलाई तक अंडे देती है। उस समय मादा बड़ी ही मीठी बोली बोलती है। इनका घोंसला पीलक का-सा होता है और देखने में सुन्दर लगता है। पीलक से इसका रंग भी बहुत कुछ मिलता-जुलता है। उत्तर विहार में इसका घोंसला प्रायः आम के पेड़ पर मिलता है। घास-फूस, घोड़े की पूंछ या मनुष्य के सिर के बाल, रूई, मकड़ी का जाला इत्यादि जुटा कर यह अपना घर बनाता है। पहले मकड़ी के जाले से दो-चार टहनियों को बाँध देता है, फिर और सामान पहुँचा कर इमारत खड़ी करता है। नर, मादा दोनों ही सामान जुटाते हैं। घोंसला ज़मीन से बहुत ऊँचा नहीं होता। आकार-प्रकार में भिन्नता होती है। इसकी चौड़ाई प्रायः ढाई इंच और गहराई एक से दो इंच होती है। भीतर बालों का गद्दा-सा रहता है। अंडों की संख्या दो होती है—कभी कभी तीन या चार भी। रंग नीला रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बच्चों को खिलाने-पिलाने का एक साहब ने मनोरंजक वृत्तान्त लिखा है। कहते हैं कि एक बार कहीं नर ने किसी बच्चे को एक कीड़ा दिया। वह इतना बड़ा था कि बच्चा उसे निगल न सका। मादा यह तमाशा देख रही थी, वह झट उड़ पड़ी और चोंच में पानी भर लाई। बच्चे के मुँह में पानी की बूंद-पर-बूंद देती गई। इससे शायद कीड़ा नरम होगया और बच्चा उसे आसानी से निगल गया।

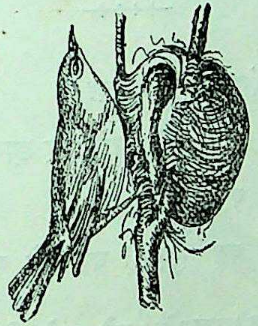

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बया

अचरज बंगला एक बनाया ,
ऊपर नींव तले पर छाया ,
बांस न बल्ली बंधन घने—
कह 'खुसरो' घर कैसे बने ?

ढाका की मलमल मशहूर है। उसे बुननेवाले जुलाहे बड़े ही अच्छे कारीगर होंगे। किसी ज़माने में यूरोप के धनी समाज में भी इस मलमल की बड़ी खपत थी, और लोग इसकी खूबियाँ देखकर आश्चर्य करते थे, कि यहाँ के जुलाहों ने कैसी उँगलियाँ पाई हैं। पर ऐसे कुछ कारीगर पक्षियों के समाज में भी पाये जाते हैं। वे उँगलियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

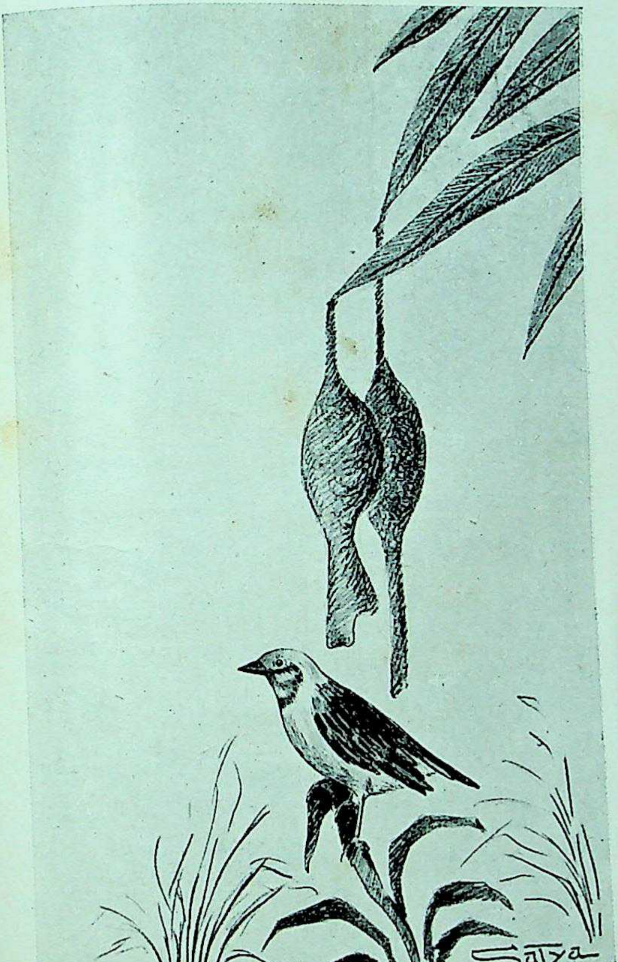

बया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जगह अपनी चोंचों से काम लेते हैं, फिर भी बुनने में कमाल कर दिखाते हैं। उनके घोंसलों का ताना-बाना देखकर आप दंग रह जायेंगे और आपके मन से यह धारणा दूर हो जायेगी कि हुनर और कारीगरी मनुष्य के ही हिस्से पड़ी थी। पक्षियों में भी दर्ज़ी और जुलाहे हैं और उनकी कला-कुशलता ऐसी है कि साधन-हीन होते हुए भी, कितनी ही बातों में, मनुष्य से बाज़ी मार ले जाते हैं। यहाँ हम एक ऐसे ही पक्षी का परिचय देंगे।

इसका नाम बया है। अँगरेज़ी में इसे जुलाहा कहते हैं और बहुत ठीक कहते हैं। यह अपना घोंसला और पक्षियों की तरह नहीं बनाता। घास-फूस जुटाकर यह उससे सूत का काम लेता है। और अपनी करामाती चोंच से अपना घोंसला बुन डालता है। ताड़ के पत्ते के सिरे से लटके हुए किसी घोंसले की याद कीजिये। वही बया का मकान और इसकी कारीगरी का नमूना है।

पहला प्रश्न शायद आप यह करेंगे कि ऐसी जगह यह घोंसला क्यों बनाता है? पक्षी साधारणतः अपने घोंसलों को सबकी आँखों से ओझल रखना चाहते हैं। फिर बया को क्या पड़ी है कि वह इस तरह आसमान में अपना झूला लगाता है और अपने दुश्मनों की नज़र बचाना तो दरकिनार, उन्हें चिढ़ाता है, चुनौती देता है और उनके सामने झूलता है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि और पक्षी न तो बुनने की कला जानते हैं न बया की तरह "औघट घाटी" में अपना मकान बना सकते हैं। बया का घोंसला सबकी आँखों के सामने ज़रूर रहता है, पर लाख कोशिश करने पर भी कोई दुश्मन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वहाँ पहुँच नहीं सकता। न डाल का सहारा है न टहनी का! ताड़ के पत्तों का जहाँ अन्त होता है वहाँ से बया का घोंसला शुरू होता है उस पर भी तुर्रा यह कि घोंसले का दरवाज़ा ऊपर न होकर नीचे होता है। कौन दूसरा पक्षी माई का लाल है जो उसके उस विचित्र घोंसले में घुस सके? यही कारण है कि बया किसीकी दृष्टि पड़ने की परवा नहीं करता। गहरी-से-गहरी परिखाओं या खाइयों से घिरा हुआ कोई किला उतना सुरक्षित नहीं है जितना पत्ते के सिरे से लटका हुआ बया का घोंसला।

बरसात आते ही नर और मादा घोंसला बनाने या बुनने के काम में हाथ लगा देते हैं। पुराना घोंसला रहा तो उसकी मरम्मत करके रहने लायक बना लेते हैं। नहीं तो नये की तैयारी की जाती है। घास-फूस और पत्तों से ही अपना महल उठाते हैं। मोटी या चौड़ी सींकों को पहले चोंच से चीर-चीर कर कई टुकड़े करते हैं। और उनमें से कुछ को ताड़ के पत्ते या बबूल की पतली टहनी के सिरे से जोड़ देते हैं। जोड़ने के लिये जो 'डोर' काम में लाते हैं वह प्रायः पाँच इंच लम्बी होती है—पर कभी-कभी बारह इंच तक। उसी डोरे का नीचे की ओर बढ़ाते-बढ़ाते घोंसले का रूप प्रदान कर देते हैं। आरम्भ में नर और मादा दोनों ही सामान जुटाते और बुनने का काम करते हैं। फिर कुछ हिस्सा बन जाने पर भीतर का 'चार्ज' मादा ले लेती है और नर का काम रह जाता है, मसाला जुटाना और बाहर से बुनने में सहायता पहुँचाना। यों तो दोनों के ही लिये यह काम बड़ा दिलचस्प है, पर नर को इसमें कुछ विशेष आनन्द मिलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। घास-फूस लाता है और अपनी खुशी ज़ाहिर करता है। बुनते-बुनते आवेश में आ जाता है और 'तराने' भरने लगता है।

घोंसला देखने में कुछ-कुछ बोतल की शकल का होता है। टहनी या पत्ते के सिरे से वह इस मज़बूती से बंधा हुआ होता है कि आंधी-तूफ़ान में भी उसके गिरने का डर नहीं रहता। भीतर दो हिस्से होते हैं। एक तो वह कमरा या कोठरी जिसमें अण्डे दिये जाते हैं, दूसरा वह सुरंग या रास्ता जो नीचे की ओर खुलता है और जिससे यह आते-जाते हैं। इस घोंसले में प्रवेश करना ज़रा टेढ़ी खीर है, पर अभ्यास होने के कारण बया को कोई कठिनाई नहीं होती। एक तो यही देखिये कि दरवाज़ा नीचे है और रहने का कमरा ऊपर। फिर दरवाज़े के पास घोंसला इतना ढीला-ढाला होता है कि अगर कोई दुश्मन वहाँ तक पहुँच भी जाये तो कहीं उसके पैर ही नहीं जम सकते। बया खुद उड़ता हुआ आता है और अपने परों को समेट के उसी सुरंग से सीधे अपने कमरे में पहुँच जाता है। सुरंग की चौड़ाई प्रायः दो इञ्च और लम्बाई छः इञ्च होती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कमरा तैयार होते ही मादा उसमें चली जाती है और अण्डे देकर सेने लगती है, इधर नर अकेला बाक़ी हिस्से को पूरा करता है। मादा एक बार प्रायः दो अण्डे देती है। कभी-कभी तीन और चार भी। इनका रंग सफ़ेद होता है। बच्चों के निकलने पर उनको बाहर से भोजन पहुँचाने के लिये उस कमरे में कुछ सूराख़ कर दिये जाते हैं।

आकार में बड़ा होते हुए भी बया का घोंसला बहुत हलका होता है। इसलिये हवा में प्रायः हिलता-डुलता रहता है। उसका वज़न भारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने के लिये बया उसमें थोड़ी मिट्टी लाकर रख देता है। कुछ लोगों का कहना है कि बया रात को अन्धकार में रहना पसन्द नहीं करता, इसलिये जुगनू को पकड़ लाता है और उसी मिट्टी में उसको चिपका देता है। अर्थात् जुगनू से 'शमा' का काम लेता है और उस मिट्टी के छोटे-से लोंदे से शमादान का। मालूम नहीं असलियत क्या है, पर कुछ लेखकों को अभी इसकी सत्यता में सन्देह है। अगर हमारे किसी पाठक को, बया के घोंसले में, कभी जुगनू मिले तो वह कृपा कर किसी पत्र या पत्रिका द्वारा इसकी सूचना अवश्य दें। जब तक जुगनू नहीं मिलता तब तक यही मान लेना ठीक जँचता है कि हवा के झोंकों से रक्षा करने के लिये ही, बया अपने घोंसले में मिट्टी लाकर रख देता है, और उसमें भारीपन ले आता है। बया के कितने ही जोड़े प्रायः एक वृक्ष पर ही घोंसले बनाते हैं। जो घोंसला अधूरा रह जाता है, उसे झूला कहते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि जिस समय मादा घोंसला बनाती रहती है उस समय नर, उसी झूले पर बैठ, उसके मनोरंजनार्थ गीत गाता रहता है। मालूम नहीं बात क्या है। हो सकता है कि घोंसले का कुछ हिस्सा तैयार हो जाने पर मादा को उससे सन्तोष नहीं होता, इसलिये उसे अधूरा छोड़ देती है। यह भी संभव है कि घोंसला पूरा-का-पूरा तैयार हो जाने पर, नर आमोद-प्रमोद के लिये ऐसा झूला तैयार कर लेता हैं।

बया को बुनने की ऐसी आदत होती है कि अगर आप उसे पिंजरे में रखें और उसे कुछ घास-फूस दे दें तो वह घोंसला बुनना शुरू कर देगा। अगर बचपन में पकड़ा जाये तो यह बड़ी आसानी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से पाला-पोसा जा सकता है। इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण होती है, इसलिये इसे तरह-तरह के खेल भी—जैसे हलकी-हलकी चीज़ें किसी स्थान से ले आना, मालिक के मुंह के पास उड़के जाना और उसके ओंठों के बीच से अनाज के दाने निकाल लाना, पानी भरना, खिलौने की बन्दूक़ फ़ायर करना इत्यादि—आसानी से सिखाये जा सकते हैं।

नर और मादा दोनों ही रंग और आकार में गौरैया के समान होते हैं। पर बरसात शुरू होते ही नर का रंग बदल जाता है। छाती, गरदन और सिर तीनों सुनहले हो जाते हैं और ठोड़ी स्याह-सी दीखने लगती है। दाना चुगनेवाली चिड़ियों की तरह बया की चोंच कुछ मोटी होती है। दाने की भूसी अलग करने के लिये इस प्रकार की चोंच विशेष उपयोगी होती होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दर्जी

भारतवर्ष में बादामी या कत्थई रंग के, कुछ छोटे—गौरैये से भी छोटे—पक्षी पाये जाते हैं जिनके अनेक भेद हैं और जिन सबको उत्तर के प्रान्तों में 'फुदकी' कहते हैं। इस देश में फुदकी की कम-से-कम एक सौ उपजातियाँ हैं। कुछ तो साल भर यहीं रहती हैं, और कुछ गरमी के दिनों में उत्तर एशिया या मध्य एशिया की ओर चली जाती हैं। इन फुदकियों में एक चिड़िया बड़ी विशेषता रखती है। उसे हम दर्जी कह सकते हैं।

दूर से तो यह बादामी रंग की दीखती है, पर पास जाकर आप देखें तो इसका सिर लाल-पीला-सा और इसकी पीठ हरी-सी नज़र आयेगी। इसकी गरदन में एक काली कंठी भी होती है और वह इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बोलते समय ही दीख पड़ती है। नीचे के हिस्से सफ़ेद होते हैं और दाम्पत्य के समय, नर की पूंछ के बिचले दोनों पर, और परों की अपेक्षा, बड़े हो जाते हैं। दर्जी चिड़िया दिनभर बोलती रहती है। जेठ-बैशाख की कड़ी धूप में जब कि कौए भी विश्राम करते हैं दर्जी चिड़िया का बोलना बंद नहीं होता। सन्ध्या-समय जब दूसरे पक्षी अपने-अपने घर चले जाते हैं, आप अक्सर देखेंगे कि दर्जी का शिकार जारी है। यह प्रायः कीड़े-मकोड़े ही खाता है। जिस समय उत्तेजित होता है उस समय दुम उठा कर बोलता है।

अच्छा इसका दर्जी नाम क्यों पड़ा? इसलिये कि यह अपना घोंसला बनाने में दर्जी की-सी कार्य-कुशलता दिखलाता है। अपनी चोंच-रुपी सुई से पत्तों को सीकर जोड़ देता है और उन्हींके संपुट में अपने लिये घर बना लेता है। सीने के लिये कहीं से मकड़ी का जाला, रुई या रेशम ले आता है। कभी-कभी किसी दर्जी की दुकान से तागे के टुकड़े भी उठा ले जाता है। अगर पत्ता बड़ा-सा हुआ तो उसके दोनों छोरों को सटाके सी देता है, नहीं तो दो-तीन पत्तों को, कभी-कभी दस अथवा बारह पत्तों को, उसी तरह आपस में जोड़ देता है। पहले तो पत्ते या पत्तों के किनारे की ओर, चोंच से छोटे-छोटे सूराख कर देता है, फिर मकड़ी का जाला और दूसरे सामान जुटा कर ऐसी सिलाई करता है कि पत्तों के छोर या भिन्न-भिन्न पत्ते सम्बद्ध हो जाते हैं। खाली मकड़ी के जाले से मज़बूत सिलाई नहीं हो सकती, इसलिये यह चालाक चिड़िया धागे की जगह काम में लाने के लिये दूसरी चीज़ें उठा लाती है। जब पत्ते जुट जाते हैं तब उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थैले के भीतर यह सेमल की रुई या वैसी ही नरम कोई और चीज़ बिछा देती है। इसका घोंसला बनाने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। किसी घोंसले का मुँह ऊपर, किसी का नीचे और किसी का बगल में होता है। इसका घोंसला आपको आम या अमरूद के पेड़ पर मिलेगा। पर कभी-कभी बैंगन अर्थात् भांटे के पेड़ पर ही मिलता है—ज़मीन से कुल दो फ़ीट ऊंचा! घोंसला बनाने में नर भाग नहीं लेता, इसका सारा श्रेय मादा को है। संभव है नर की पूंछ के दोनों बिचले लम्बे पर बाधक हों, पर यह भी संभव हो सकता है कि वह आलस्य या अभिमान के कारण यह काम करना नहीं चाहता।

घोंसला प्रायः तीन इंच गहरा होता है, और दो इंच चौड़ा। अंडे तीन होते हैं, पर कभी-कभी चार भी। उनका रंग सफ़ेद होता है। घोंसला छोड़ने के बाद भी मां-बाप, कुछ दिनों तक, बच्चों की निगरानी करते हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, फुदकियां और भी बहुत सी हैं। पर स्थानाभाव के कारण हम उन सबका परिचय देने में असमर्थ हैं।

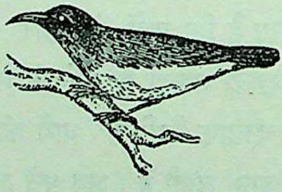

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबाबील

बहुत लोग आश्चर्य करते होंगे कि पक्षी पेड़ पर रात को कैसे सो सकते हैं ? बात यह है कि उनके पैरों की बनावट ही कुछ ऐसी होती है कि नींद पड़ जाने पर भी, वे डाल या टहनी से चिपके रहते हैं। बुलबुल के पैर में तीन उँगलियाँ आगे, एक पीछे होती हैं। तोते के दो आगे दो पीछे। इसीलिये ये डाल या टहनी को आसानी से पकड़ कर बैठ या सो सकते हैं। पर कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जिनके पैर की चारों उँगलियाँ आगे की ओर होती हैं। इन्हींमें एक अबाबील भी है। पैर की बनावट में इस विचित्रता का नतीजा यह होता है कि न तो यह ज़मीन पर ही चल-फिर सकती है, न डाल या टहनी पर ही बैठ सकती है। या तो यह अपने घोंसले में रहती है, या आसमान में चक्कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगाया करती है। अबाबील को आप कभी तार पर बैठे न पायेंगे, पर उसे किसी चीज़ के सहारे लटकते हुए आपने अक्सर देखा होगा।

यह काले रंग की चिड़िया है। इसकी पीठ के नीचे की ओर एक सफ़ेद चौड़ी धारी-सी रहती है। आकार में गौरैये से भी छोटी होती है। पैर बहुत छोटे होते हैं। उड़ने में बड़ी तेज़ है। उड़ते समय इसके डैने बराबर फैले हुए रहते हैं और यह उनके सिरों से हवा काटती जाती है। आप इसे प्रायः झुंड में उड़ते हुए पायेंगे। उड़ते समय यह एक तरह की बोली भी बोलती है।

अबाबील अपना घोंसला किसी मकान, मन्दिर या मस्जिद में बनाती है। वह एक प्याली की शकल का होता है और उसे बनाने के लिये यह चिड़िया कुछ घास-फूस, चिड़ियों के पर या पशम जुटाती है। इसकी लार बड़ी लसदार होती है और यह उससे गोंद का काम लेती है। मकान की छत या दीवार से घास-फूस को अपनी लार के जरिये चिपका देती है और बात-की-बात में इसका घोंसला तैयार हो जाता है। चीन-देश में एक प्रकार की अबाबील का घोंसला मनुष्य के भोजन में काम आता है। वह भी उसकी लार से ही तैयार होता है। लोग उसे उतार लाते हैं और उसका शोरबा बनाकर जीभ चलाने लगते हैं। अबाबील सालभर अपने घोंसले में रहती है। आपके गाँव में कोई पुरानी इमारत हो तो आप उसमें कुछ अबाबीलों के घोंसले ज़रूर पायेंगे। यह ऐसे पतंगों का शिकार कर पेट पालती है जिन्हें यह हवा में उड़ते हुए आसानी से, अपनी चौड़ी चोंच में, पकड़ सकती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अबाबील के अण्डे सफ़ेद तथा उनकी संख्या तीन होती है। अगर आप उन्हें देखना चाहें तो फ़रवरी से अगस्त तक तलाश कर सकते हैं।

ताड़ी अबाबील

ताड़ के पेड़ों पर एक ख़ास तरह की अबाबील के घोंसले मिलते हैं, और उसे इसीलिये ताड़ी अबाबील कहते हैं। इसकी और आदतें तो साधारण अबाबील की-सी होती हैं पर यह घोंसला मकान में न बनाकर ताड़ के पेड़ पर बनाती है। ताड़ के पत्ते में कुछ घास-फूस या परों को अपनी लार से चिपका कर यह घोंसला तैयार करती है। साधारण अबाबील से यह छोटी होती है। इसके पैर भी दूसरी तरह के होते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि अबाबील उड़ने में बहुत तेज़ होती है। इस विषय में शायद ही कोई पक्षी इसकी बराबरी कर सके। कोई-कोई अबाबील घण्टे में सौ मील से भी अधिक जा सकती है। एक बार एक हवाई जहाज़ घण्टे में ६८ मील के हिसाब से उड़ता जा रहा था। ईराक़ में एक जगह उसे कुछ ऐसे अबाबील-पक्षी मिले जो ज़मीन से ६००० फ़ीट की ऊँचाई पर चक्कर काट रहे थे। कई बार ये उस हवाई जहाज़ से आगे बढ़ गये। इसीसे इनके वेग का अनुमान किया जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किलकिला

मेरे कान सुजान तुव नैन—किलकिला आइ,
हृदय-सिंधु ते मीन-मन तुरत पकरि लैजाइ !

—रसनिधि

शायद ही कोई देश ऐसा होगा जहाँ किलकिला न हो। भारतवर्ष में यह सर्वत्र पाया जाता है, यद्यपि ऊँचे पहाड़ों पर इसके दर्शन नहीं होते। यही हाल बर्म्मा और सिलोन का है। यह उन पक्षियों में है जो अपना ख़ास व्यक्तित्व रखते हैं। शकल-सूरत देखते ही आदमी कह देगा कि यह जाति का मछुआ है और मछली मारना इसका मुख्य व्यवसाय है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

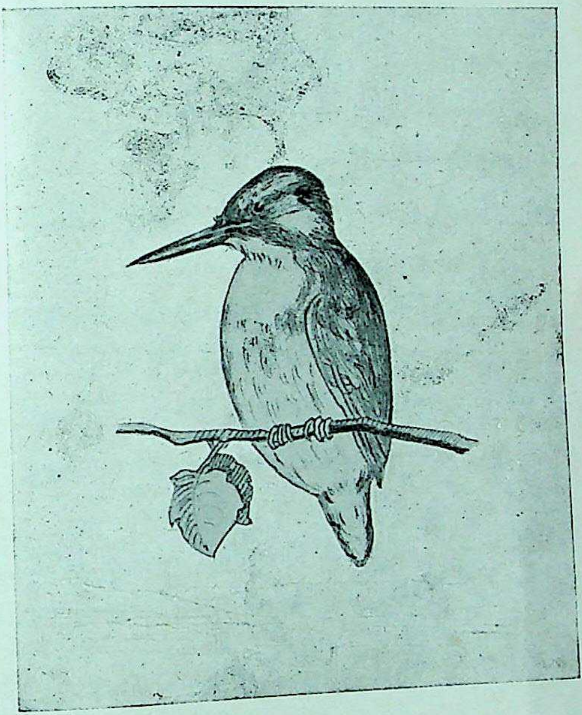

किलकिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसकी चोंच बहुत लंबी होती है, जिससे पानी में मछली पकड़ सके। पैर बहुत छोटे होते हैं। सो भी मज़बूत नहीं। ये न तो ज़मीन पर दौड़ते हैं, न चलते-फिरते हैं—इन्हें मज़बूत पैरों की ज़रूरत ही क्या! इनकी जीभ भी छोटी होती है। पैरों में तीन उंगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर रहती हैं।

भारतवर्ष में इसकी प्रायः तीन उपजातियाँ हैं—

साधारण किलकिला

साधारण किलकिला मैना के आकार का होता है। चोंच बहुत बड़ी, जामुनी रंग की, और पैर लाल होते हैं। सिर, गरदन और नीचे के पर बादामी रंग के, गला सफ़ेद, उपर के पर नीले, डैनों के पर लाल, काले और सफ़ेद होते हैं। यह साधारणतः कीड़ों का शिकार करता है। पर मछली भी खाता है, यद्यपि उसे पकड़ने से जी चुराता है। इसके घोंसला बनाने का समय मार्च से जुलाई तक है।

छोटा किलकिला

छोटा किलकिला गौरैये के आकार का होता है। इसके सिर पर काली और नीली धारियां रहती हैं। पूंछ, पीठ और डैने नीले, नीचे का हिस्सा कुछ लाल, गाल सफ़ेद, चोंच काली और पैर बिलकुल लाल होते हैं। पानी के किनारे, किसी पेड़ की डाल पर बैठा कभी इधर, कभी उधर देखता है। मछली देखते ही कूद कर गोता लगाता है और उसे चोंच में पकड़े बाहर निकल आता है। यह छोटी-छोटी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछलियों को पूरा-का-पूरा निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से जून तक है।

कौड़ियाला

कौड़ियाला भी मैना के बराबर होता है। इसके पर कुछ सफ़ेद कुछ काले होते हैं। चोंच और पैर बिलकुल काले। इसका आहार केवल मछली है। यह किसी पेड़ की डाल पर बैठकर शिकार की राह नहीं देखता। पानी की सतह से कुछ ऊँचाई पर उड़ता रहता है और मछली देखते ही थोड़ी देर के लिये उड़ना बन्द कर देता है। फिर ऐसे वेग से नीचे आता है कि जान पड़ता है, ज़िन्दा ही न रहा। पर एक ही क्षण बाद मछली को चोंच में दबाये हुए बाहर निकलता है और किनारे जाकर उसे निगल जाता है। इसके घोंसला बनाने का समय जनवरी से अप्रैल तक है।

दरिया मैना की तरह किलकिला ज़ाति के सभी पक्षी, नदियों के किनारे, कगारों में घोंसला बनाते हैं। घोंसला दो भागों में विभक्त होता है—पहले सुरंग-सा रास्ता तैयार करके फिर अंडे देने को जगह तैयार करते हैं। उसमें मछली के कांटे बिखरे रहते हैं और जो दुर्गन्ध आती है उसकी चर्चा न करना ही ठीक है। पक्षियों में कुछ तो अपने घर को बहुत साफ़-सुथरा रखते हैं, पर कुछ इस विषय में इतने उदासीन होते हैं कि मनुष्य के लिये उसके पास खड़ा होना असम्भव है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

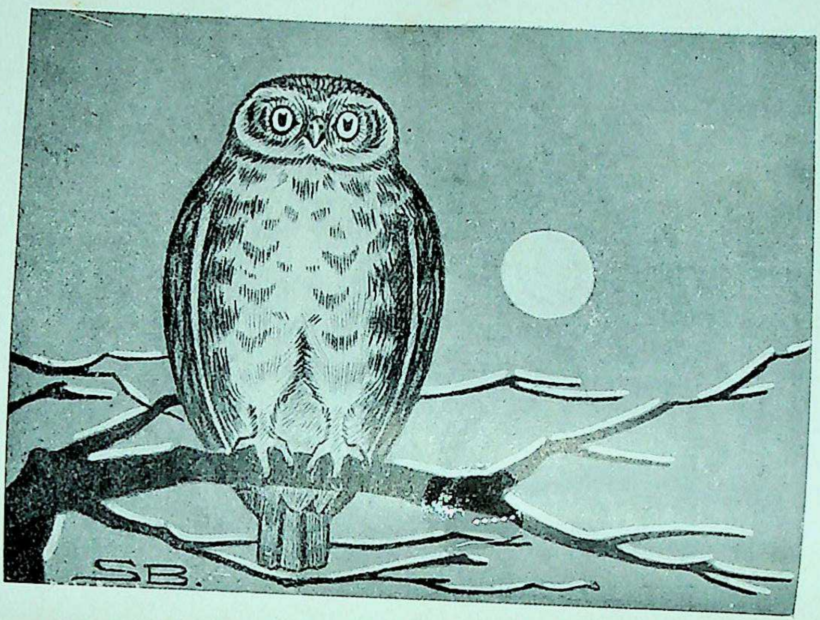

पृष्ठ १२५]

उल्लू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लू

शीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत, नहिं चूक;
'रहिमन' तेहि रवि को कहा, जो घटि लखे उलूक ?

सृष्टि में अद्भुत-अद्भुत बातें देखने को मिलती हैं। जिस सुन्दर प्रकाश में बाक़ी प्राणी सब कुछ देखते हैं उसमें उल्लू अंधा बना रहता है। परन्तु जिस अंधकार में औरों की आँखें काम नहीं करतीं उसमें उसे दूर की सूझती है। वह दिन भर कहीं छिपा रहता है और शाम को शिकार करने निकलता है। दुनिया की रात ही उसके लिये दिन है।

उल्लू का सिर बिल्ली की तरह गोल होता है। इसकी और भी विचित्रतायें हैं। प्रायः सभी पक्षियों की आँखें सिर में सामने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ओर न होकर बगल में होती हैं। उल्लू की आँखें बड़ी और चमकीली होने के साथ, हमारी-आपकी तरह ठीक सामने होती हैं। बात यह है कि वह शिकारी चिड़िया है पर वह स्वयं किसीका शिकार नहीं बनता। बगल में आँखें होने से और पक्षी पीछे की ओर भी देख सकते हैं। उनपर प्रायः दूसरों के आक्रमण हुआ करते हैं, इसलिये उन्हें आगे-पीछे दोनों ओर नज़र रखनी पड़ती है। उल्लू को अपने ऊपर आक्रमण की आशंका नहीं रहती, स्वभावतः उसके लिये बगल में आँखें होना उतना आवश्यक नहीं है। आपके कानों के स्थान पर यदि आँखें होतीं तो आप भी पीछे की चीज़ों को बखूबी देख सकते। हाँ, सामने जैसी नज़र इस समय रख सकते हैं वैसी तब न रख सकते। उल्लू को अपना शिकार पकड़ने में, सामने आँखें होने से, बड़ी सहूलियत होती है। पर वह पीछे की ओर देख ही नहीं सकता, यह समझना भूल है। वास्तव में वह मनुष्य की तरह अपने सिर को बहुत कुछ इधर-उधर घुमा सकता है।

उल्लू के कान भी बड़े होते हैं—इतने बड़े कि आप आसानी से उनमें उँगली डाल सकते हैं। और पक्षियों की तुलना में इसकी सुनने की शक्ति अधिक होती है और इससे भी शिकार पकड़ने में बड़ी सहायता मिलती है। इसके पर बहुत ही मुलायम होते हैं। उड़ते समय यह ज़रा भी शब्द नहीं करता। रात में कैसा ही सन्नाटा क्यों न हो, परन्तु इसके शिकार को इसकी ज़रा भी आहट नहीं मिल सकती। इसकी एक और विचित्रता यह है कि इसके पैर अंगूठों तक परों से ढके रहते हैं। इसका भी विशेष कारण है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लू अपने शिकार को पूरा-का-पूरा निगल जाता है। हड्डी या पर जैसी चीज़, जो हज़म नहीं होती, पीछे छोटी-छोटी गोलियों के रूप में निकल जाती है। पर जिस समय उल्लू चूहे जैसे जीव को पकड़ता है उस समय शिकार भी छुटकारा पाने के लिये कुछ उठा नहीं रखता। इसके पैरों को काट खाने की पूरी चेष्टा करता है। अगर उल्लू के पैर परों से ढके हुए न हों तो वह घायल हो जाय और उसे लेने के देने पड़ जायँ।

खेती के लिये उल्लू उपयोगी पक्षी है। किसानों के कितने ही शत्रुओं का नाश कर उनकी भलाई करता है। चूहे जैसे जीव प्रायः रात को किसानों की कमाई पर दाँत साफ़ करने निकलते हैं। उल्लू उनकी संख्या घटाने में सहायक होता है। चूहों के अतिरिक्त वह और जीवों का भी शिकार करता है, जैसे कीड़े-मकोड़े, छिपकलियाँ और चिड़ियों के बच्चे।

भारतवर्ष में उल्लू की प्रायः चालीस जातियाँ मिलती हैं। इनमें सबसे साधारण "खूसटिया" उल्लू है। यह गौरैये से बहुत बड़ा नहीं होता। शोर मचाने में यह बेजोड़ है। इसके ऊपर के पर बादामी होते हैं, जिनपर सफ़ेद दाग़-से रहते हैं; नीचे के पर सफ़ेद, जिनपर बादामी धब्बे या धारियाँ होती हैं। आँखें, बड़ी और पीले रंग की होती हैं।

कहा तो यह गया है कि—

होइ उजियार, सूर जस तपै,
खूसट मुख न दिखावै छपै।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु और उल्लुओं से खूसट की यह विशेषता है कि वह प्रकाश को उतना बुरा नहीं मानता और कभी-कभी दिन-दहाड़े इधर-उधर उड़ता हुआ पाया जाता है।

साधारणतः उसके बाहर निकलने का समय सूर्यास्त के क़रीब है। सारा दिन किसी वृक्ष के कोटर या पुरानी दीवार के सूराख़ में बिताता है। बाहर निकलने का समय होते ही पहले देख लेता है कि दुनियाँ की क्या हालत है! फिर किसी पेड़ की डाल या ऊँचे खंभे पर जा बैठता है। वहाँ थोड़ी देर तक चुप रहकर अपनी 'कच-कच' 'कुचकुच'—बोली बोलने लगता है। शायद इसीलिये उल्लू को कुचकुचवा भी कहते हैं। बोलता क्या है कभी-कभी सुननेवाले का कान खा जाता है। उस समय अगर वह आपको अपनी ओर टकटकी लगाये देख ले तो पहले तो बड़ी भयंकर सूरत बनाकर आपको घूरेगा, फिर कुचकुच करता हुआ कहीं चल देगा। मानो आपसे रुष्ट होकर, लड़-झगड़कर गया हो।

खूसटिया के अण्डे देने का समय फरवरी से अप्रैल तक है। अधिकांश मार्च में अण्डे देते हैं। इनकी संख्या तीन से पाँच तक होती है। रङ्ग शुरू में गुलाबी रहता है, फिर सफ़ेद रह जाता है। घोंसला या तो किसी पेड़ के खोखले हिस्से में या पुरानी इमारत के सूराख़ में, घास-फूस, सड़ी-गली लकड़ी या चिड़ियों के परों से बनाया जाता है। बच्चे भी माँ-बाप की तरह शोर मचानेवाले होते हैं।

उल्लू और पक्षियों के लिये अजनबी-सा होता है। इसलिये अगर वह कहीं भूल-भटक कर दिन में निकल पड़ता है तो दूसरे पक्षी, ख़ास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर कौए, उसे बहुत तंग करते हैं। पर खूसटिया के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। वह दिन में भी अपनी सूरत दिखाता रहता है। इसलिये वह और उल्लुओं की तरह अपरिचित नहीं होता।

चाँदनी रात में खूसटिया के अतिरिक्त आप दो और छोटे-छोटे उल्लुओं को देख सकते हैं। इनमें एक का नाम 'जंगली चुगद' है और दूसरे का नाम 'चुगद कसियल' पर सभी उल्लू इन तीनों की तरह छोटे नहीं होते। संसार में ४ इंच से २ फ़ीट तक लम्बे उल्लू मिलते हैं। कुछ उल्लू ऐसे होते हैं जिनके सिर पर चोटी होती है। कुछ ऐसे जिनके कान के पास के पर ऊपर को उठे हुए होते हैं। प्रत्येक उल्लू की चोंच टेढ़ी और नुकीली होती है।

अज्ञान की उपमा अन्धकार से दी जाती है। उल्लू को अन्धकार प्यारा है, इसलिये तुलसीदासजी लिखते हैं:—

होहिं उलूक सन्त-निन्दा-रत; मोह-निशा-प्रिय, ज्ञान-भानु मत।

अर्थात् सन्तों की निन्दा करनेवाले उल्लू का जन्म लेते हैं। उन्हें मोह-रूपी रात प्यारी होती है, ज्ञान-रूपी सूर्य नहीं।

उल्लू पूर्व जन्म में क्या थे, यह जानना असम्भव है। पर अगर उनको मालूम हो जाय कि गोस्वामीजी ने उनके विषय में क्या लिखा है तो हम समझते हैं कि वे इसका प्रतिवाद किये बिना न रहेंगे।

एक दूसरे साहब फ़रमा गये हैं कि:—

क़द्रदानों की तबीअत का अजब रंग है आज।
बुलबुलों को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुए॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर वास्तव में उल्लू के क़द्रदां पहले भी होते थे। यूनान में वह सरस्वती का वाहन समझा जाता था। हम देख चुके हैं कि उल्लू किसानों की भलाई करता है। यह गुण बुलबुल में भी है। इसलिये हम तो यही कहेंगे कि बुलबुल के साथ उल्लू की भी औलाद बढ़े।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चील

दिरमो-दाम अपने पास कहाँ ?
चील के घोंसले में मास कहाँ ?

—ग़ालिब

बचै न बड़ी सबीलहूं 'चील्ह' घौंसुवा मांस।

—बिहारी

चील-झपट्टा मशहूर है। बाज़ार में या रेलवे स्टेशन पर, खाने की कुछ चीज़ें ले जाते समय आपको उसका अनुभव ज़रूर हुआ होगा। यों तो यह माँस को छोड़ और किसी चीज़ को पसन्द नहीं करती, पर इस तरह झपटना इसका स्वभाव-सा है। पूरी-कचौरी को अक्सर

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

मनुष्य के हाथ से झपट कर ले जाती है, और फिर कहीं गिरा देती है। देखा नहीं पर सुना है कि कभी-कभी सुनार के हाथ से यह ज़ेवर भी झपट्टा मार कर ले जाती है। जहाँ मांस-मछली की दूकान होती है वहाँ चीलें बहुत मंडराती—और लूट-खसोट कर पराया माल अपना करती—रहती हैं।

चील प्रायः सभी गरम मुल्कों में पाई जाती है। आसमान में बहुत ऊँचाई पर, प्रायः बिना पर हिलाये, चक्कर लगाया करती है। यह बहुत तेज़ उड़नेवाली चिड़िया है। इसका रंग ख़ैरा या कत्थई होता है, परन्तु पैर पीले होते हैं। चोंच की ऊपरवाली हड्डी कुछ बड़ी, नुकीली और मुड़ी हुई होती है। उसकी बनावट ऐसी होती है कि माँस को आसानी से चीर-फाड़ सके।

चील एक नंबर की चालाक चोर और डाकू है। कभी-कभी मुर्ग़ी के छोटे बच्चों को भी ले जाती है। साधारणतः यह कीड़े-मकोड़े, माँस-मछली के टुकड़े, गिरगिट, चूहे इत्यादि खाती है। इसके देखने की शक्ति आश्चर्य्यजनक है। खेत या मैदान में कोई चूहा निकला या मरा पड़ा हो तो यह उसे तीन-चार हज़ार फ़ीट उपर से देख सकती है। चील अपने शिकार को चोंच से नहीं, चंगुल से पकड़ती है, और फिर किसी पेड़ पर लेजाकर चीर-फाड़ कर खा जाती है। आपने देखा होगा, चील अपने चंगुल में कुछ दबाये जा रही है और कौए उसका पीछा कर रहे हैं। अक्सर ये उसके चंगुल से शिकार छीन-झपट लेते हैं। अगर उसकी आदत चोंच से पकड़ने की होती तो कौओं को यह साहस न होता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चील के उड़ने का ढंग निराला है। यह अपने डैनों को, और बहुत-सी चिड़ियों की तरह, हिलाती-डुलाती नहीं। उन्हें फैला कर प्रायः स्थिर रखती है और हवा के सहारे आगे बढ़ती जाती है। उड़ते समय सिर घुमा कर कभी इधर कभी उधर देखती है। जहां खाने लायक़ किसी चीज़ पर नज़र पड़ी, छलांग मारती हुई उसपर टूट पड़ती है और उसे पंजों से पकड़ कर नौ दो ग्यारह हो जाती है।

चील के खाने की चीज़ें कौए के आहार में शामिल हैं। इस लिये इन दोनों में दोस्ती नहीं हो सकती। कौए बीच-बीच में इन्हें खूब तंग करते हैं। एक चील के आगे हो लेता है, एक पीछे। पीछे वाला चील की पूँछ को चोंच से ठुकराता है। जब वह इसकी ख़बर लेने के लिये मुड़ती है तब आगे वाला कौआ भी वही काम करता है। इस तरह कुछ दूर तक वे इसे खूब ठुकराते जाते हैं। घोंसला बनाने के दिनों में कौओं की यह हरकत ज़्यादा देखने में आती है।

चील के घर बसाने का समय जनवरी-फरवरी के लगभग है। यह बहुत ऊँचे वृक्ष पर, डाल-पात जुटा कर अपना बेढंगा घोंसला तैयार करती है। अंडे प्रायः दो देती है जो देखने में सुन्दर होते हैं। बच्चों को उड़ना कुछ देर से आता है, पर मसल वही होती है कि देर आयद दुरुस्त आयद। चील अपने बच्चों को खिलाने के लिये दूसरी चिड़ियों के बच्चे चुरा लाती है। यों तो चील की बोली ची-ची या ची-ही-ची-ही जैसी होती है पर बच्चों के मुँह से ख़ाली 'म्यु-म्यु' निकलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीध या उकाब से चील की पहचान यह है कि इसकी पूंछ के किनारों के पर, बिचले परों से, बड़े होते हैं, इसलिये वह दुसाखा-सी जान पड़ती है।

शंकर चील

साधारण चील के अलावा एक और चील होती है जिसे शंकर चील, धोबिया चील या 'रूह मुबारक' कहते हैं। बंगाल में इसका नाम शंख चील है। इसके सिर और कंधे सफ़ेद होते हैं और डैने खैरे रंग के। यह देखने में सुन्दर लगती है। यह भी मांसाहारी है पर यह ख़ास तौर से मछलियों का शिकार करती है। इसका घोंसला प्रायः किसी झील या तालाब के किनारे, बड़े पेड़ पर मिलता है।

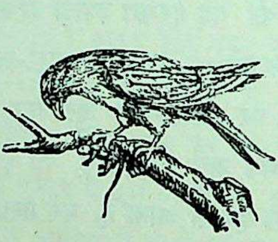

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गीध

गीध भारतवर्ष के बड़े-से-बड़े पक्षियों में से है। बड़ा ही कुरूप और कुडौल होता है। इसका कर्म भी ऐसा है कि देखते ही कुछ लोगों के मन में इसके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है। पर विचार कर देखिये तो गीध की उपयोगिता कम नहीं है और हमें इसका उपकार मानना चाहिये। मनुष्य-समाज में, अज्ञान या जड़ता के कारण, कुछ लोग इसीलिये 'अछूत' माने जाते हैं कि वे कुर्सियों पर बैठ कर लेख नहीं लिखते, बल्कि मल-मूत्र या गलीज़ की सफ़ाई करते हैं। पर सोचने की बात है कि समाज को ऐसे सेवक न मिलें तो उसकी क्या हालत हो। वास्तव में ऐसे काम का महत्व किसी भी अंश में कलम या तलवार चलाने से कम नहीं है। इसलिये मेहतरों या धांगड़ों के द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमारा जो उपकार होता है उसे हमें नहीं भूलना चाहिये और उन्हें एक क्षण के लिये भी घृणा या तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। अब गीध की बात लीजिये। इतने जीव रोज़ मरते हैं। कोई-कोई भले ही कहीं गाड़ दिये जायें, पर अधिकांश यों ही खुली हवा में फेंक दिये जाते या पड़े रहते हैं। मुर्दे का शरीर बड़ी तेज़ी से सड़ने-गलने लगता है और अगर उसको हज़म कर जानेवाले गीध न हों तो हवा इतनी गन्दी हो जाये कि नित नयी बीमारी पैदा हो और हम लोगों के लिये एक बड़ी ही भयंकर समस्या खड़ी हो जाय। संसार की सफ़ाई करनेवालों में गीध ऊँचा आसन पाने योग्य है। जब कभी हम उन्हें मुर्दार खाते देखें तो यह याद रखें कि वे हमारी भलाई कर रहे हैं।

गीधों के वंश में जटायु नाम के अमर शहीद हो गये हैं। इनकी कथा आपको रामायण में मिलेगी। दुष्ट रावण के हाथों से सती साध्वी सीता का परित्राण करने के प्रयत्न में इन्होंने अपने प्राण भी गवां दिये। इन्हींके उपकार को स्मरण कर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा था:—

पर-हित वस जिनके मन माहीं
तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

गीध की गरदन वे-पर की होती है। इसका कारण 'हुदहुद' के प्रकरण में बताया जा चुका है। कहते हैं कि यह सुलेमान नामक सिद्ध पुरुष के अभिशाप का फल है। गीध के डैने बहुत मज़बूत होते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं और उनकी बदौलत यह बिना विश्राम किये घंटों आसमान में चक्कर लगा सकता है। उड़ते समय यह अपनी तेज़ नज़र से नीचे चारों ओर देखता रहता है। गीध प्रायः एक दूसरे की देखा-देखी नीचे उतरते हैं। थोड़ी ही देर में मरे हुए या मौत के पास पहुँचे हुए जानवर के पास गीधों का जमघट लग जाता है और वे अपनी मज़बूत चोंच से उसे चीर-फाड़ कर खाने लगते हैं। गीध इस 'महामहोत्सव' में इतना खा लेते हैं कि दो-चार दिन तक और कुछ खाने का नाम नहीं लेते। भारी-भरकम हो जाने से उड़ने में असमर्थ हो जाते हैं और किसी सूखे पेड़ की डाल पर चुपचाप बैठ पेट की चीज़ को पचाते रहते हैं। फिर जब भूख लगती है तब आसमान में चक्कर लगाते और गिज़ा तलाश करने निकलते हैं।

गीधों में सबसे बड़ा राजगीध होता है। इसकी लम्बाई प्रायः एक गज़ होती है। कुत्ते के कान की तरह गरदन के दोनों ओर चमड़ा लटकता रहता है। छाती और कंधे के पर कुछ सफ़ेद होते हैं, बाकी सारे पर काले। सफ़ेद गीध नाम का एक छोटा गीध भी पाया जाता है। यह प्रायः मल-मूत्र ही खाता है। इसलिये अंगरेज़ी में इसे मेहतर कहते हैं। इसकी पहचान यह है कि सिर, गरदन और चोंच का रंग पीला और पर कुछ मैली लिये हुए सफ़ेद होते हैं। बच्चे शुरू में काले रहते हैं पर एक बरस बाद सफ़ेद हो जाते हैं।

गीध के घर बनाने का समय जाड़ा है। बहुत ऊँचे वृक्ष पर टहनियों से बड़ा-सा घोंसला बनाके उसी में मादा एक या दो अंडे देती है। राजगीध या साधारण गीध के घोंसले में आप एक ही अंडा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पायेंगे, जिसका रंग सफ़ेद होगा। सफ़ेद गीध के साधारणतः दो अंडे होते हैं और उनपर लाल बुंदकियां रहती हैं। घोंसला बनाते समय गीध का मिजाज कुछ गरम रहता है। उसके अंडों को कोई नष्ट नहीं करता, इसीलिये उनकी संख्या भी केवल एक या दो ही होती है। जिन पक्षियों की अधिक हानि होती है उन्हींको अधिक अंडे देने की ज़रूरत भी पड़ती है।

मुर्दार खाने की वजह गीध की देह से दुर्गंध बहुत आती है। पर इसका कोई इलाज नहीं है। गीध के स्नान करने का ढंग निराला है। वह न तो पानी में डुबकी लगाता है, न धूल में लोटपोट करता है। बस कहीं धूप में बैठ कर डैनों को फैला देता है और इस प्रकार सूर्य का सेवन करके ही अपनी सफ़ाई कर लेता है।

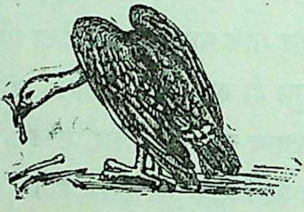

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाज़

डूबा हुआ है सर को गरेबां में डाल के,
उड़ता मगर है खोले हुए पर ख़याल के।
जिस तरह 'बाज़' लाये कबूतर को मार कर,
यों लाता आसमां से है मज़मूं उतार कर॥

—आज़ाद

नीची पै नीची निपट, दीठि कुही लौं दौरि!
उठि ऊँचे नीचै दियो मन-कुलंग झकझोरि!

—बिहारीलाल

बाज़ उन पक्षियों में है जो दूसरों का शिकार करते हैं और उन्हें खा जाते हैं। इसीलिये उसे शिकारी चिड़िया कहते हैं। बहुत पुराने समय से इस देश में कुछ लोग अपने मनोरंजन के लिये बाज़ पालते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आये हैं। अकबर बादशाह ऐसे ही लोगों में से था। उसके आदेश से, उनके सम्बन्ध में कितने ही नियम बने हुए थे और समय-समय पर वह इसके द्वारा दूसरी चिड़ियों का शिकार करता था। जिन्हें इस विषय में विशेष जानने की इच्छा हो वे "आईने अकबरी" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ देखें।

उत्तर भारत में इसकी दो उपजातियाँ हैं—एक को बहरी, दूसरी को कुही कहते हैं। वास्तव में ये दोनों ही मादाओं के नाम हैं। बहरी सालभर नहीं रहती, वह जाड़े के दिनों में ही इधर आती है। कुही सालभर रहती है। और कितनी ही शिकारी चिड़ियों की आँखें पीली होती हैं पर बाज़ की नहीं। उसकी विशेषता है कि उसकी आँखें काली होती हैं, इसीलिये उसे स्याहचश्म कहते हैं। बाज़ में सबसे मार्के की बात तो यह है कि उसके डैने लम्बे और नुकीले होते हैं। जिस समय वह उन्हें समेट लेता है उस समय वे उसकी पूँछ को प्रायः ढक लेते हैं। बाज़ की चोंच मुड़ी हुई और मज़बूत होती है। मांस चीरने-फाड़ने के लिये वह बहुत उपयुक्त है।

शिकारी चिड़ियों में बाज़ की बराबरी की कोई नहीं है। इसे उनका राजा कह सकते हैं। बहरी ख़ासकर कौओं और पानी की चिड़ियों का शिकार करती है, और कुही कबूतरों, तोतों और तीतर-बटेरों का। बाज़ के पंजों में इतनी ताक़त होती है कि उड़ते हुए पक्षी को उनसे सहज ही मार सकता है। चोंच से सिर्फ़ मांस नोचने का काम लिया जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

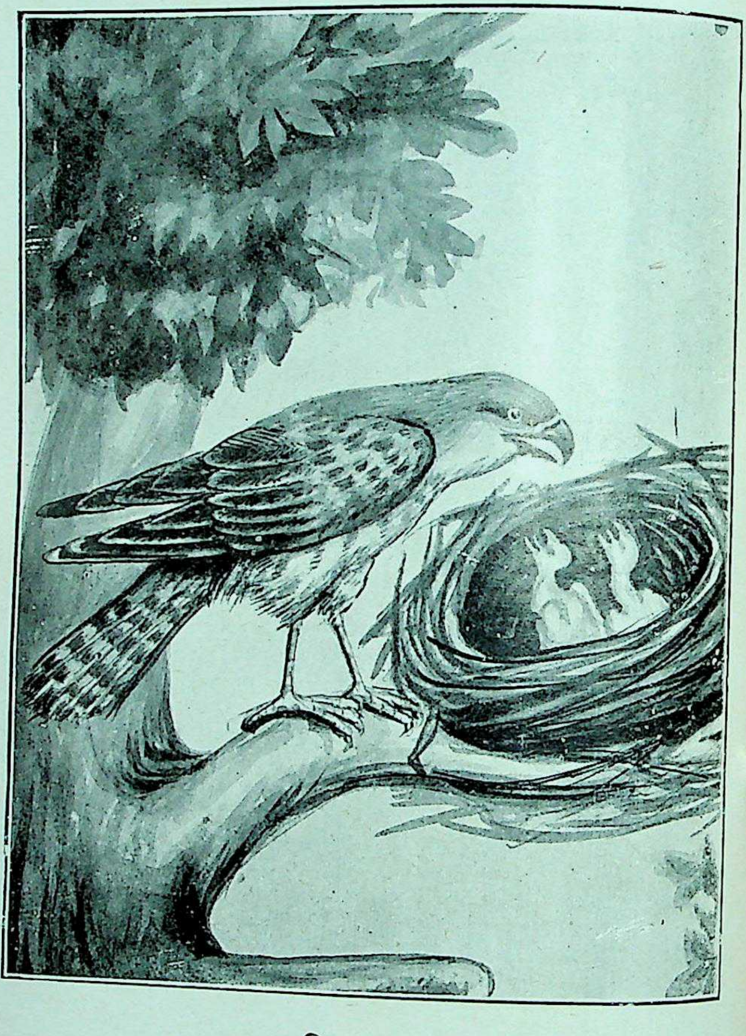

शिकरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिकरा

शिकारी चिड़ियों में शिकरे को प्रायः सबने देखा होगा। आकार में यह कौए से छोटा होता है। नर और मादा दोनों एक ही रंग के होते हैं। मादा को ख़ासकर शिकरा कहते हैं और नर को चिपका या चिपक। इनके ऊपर के पर भूरे और बच्चों में बादामी होते हैं। पूँछ का रंग भी यही होता है पर उसपर काली धारियाँ रहती हैं। बच्चों के शरीर के नीचे के हिस्से सफ़ेद होते हैं जिनपर बादामी रंग के अंडाकार धब्बे पाये जाते हैं। मादा के शरीर पर ऐसे दाग़ या धब्बे कुछ अधिक होते हैं। पैर और आँखें पीली होती हैं, पर बच्चों की आँखों का रंग कुछ हलका होता है। इसकी चोंच भी मुड़ी हुई होती है और पञ्जे ख़ूब तेज़। शरीर को देखते हुए पूँछ ज़्यादा लम्बी मालूम देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह छोटी-छोटी चिड़ियों का शिकार करता है। फ़ाख़्ता या मैना पर चोट करते हुए आपने इसे अक्सर देखा होगा। पर गिरगिट, चूहे और छोटे-मोटे कीड़े-पतंगे भी इसके आहार में शामिल हैं, इसलिये उनपर भी इसके आक्रमण होते रहते हैं। जिन लोगों को शिकार के लिये ऐसे पक्षी पालने का शौक़ है वे शिकरा ज़रूर रखते हैं। इसका कारण यह है कि इसको इस काम की तालीम आसानी से दी जा सकती है। जो चाहे इसे चिड़ियों का शिकार कर उन्हें पकड़ लाना सिखा सकता है। शौक़ीन लोग इसे विशेषतः तीतर और बटेर पकड़ लाने के लिये पालते हैं।

इसके शिकार करने का ढंग निराला है। जिस पक्षी को पकड़ने चलता है उसका पीछा नहीं करता। अगर वह भाग चला या कतरा कर निकल गया तो यह लौटकर अपनी जगह आ जाता है।

इसके घोंसले बनाने का समय अप्रैल से जून तक है। ऊँचे वृक्ष पर कुछ टहनियों को जुटा कर यह अपना घोंसला तैयार करता है। इस प्रकार के पक्षियों के घोंसले बड़े ही कुढंगे होते हैं, सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यंत निराशाजनक। शिकरा, चील और दूसरी शिकारी चिड़ियों को, घोंसला बनाते समय कौए बहुत तंग करते हैं। इससे जो काम हफ़्ते भर में हो सकता था, उसमें कभी-कभी तीन हफ़्ते लग जाते हैं। जिस वृक्ष पर शिकरा घोंसला बनानेवाला होगा उस पर तीन-चार कौए जा बैठेंगे और काँव-काँव शुरू कर देंगे। इनका बोलना क्या है घोंसला बनानेवालों को चिढ़ाना है। पर शिकारी पक्षी भी इसे कब बर्दाश्त करनेवाले हैं? अपमान का बदला लेने के लिये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनके पीछे पड़ जाते हैं। पर कौओं को पकड़ लेना आसान बात नहीं है, इसलिये कुछ ही दूर तक पीछा कर लौट आते हैं और फिर अपने काम में जुट जाते हैं। दो ही एक मिनट बाद देखते हैं कि बदमाशों का गुट फिर आ पहुँचा और छेड़खानी करने लगा। गोरी और गज़नी की जितनी चढ़ाइयाँ भारतवर्ष पर नहीं हुई उतनी इन कौओं की ऐसे वृक्षों पर होती हैं।

अंडों की संख्या प्रायः चार होती है और उनका रंग सफ़ेद। शिकरा साल भर में इसी देश में रहता है। अकबर बादशाह ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि मादा ॥) से डेढ अशर्फ़ी को बिकती थी और नर।) से एक अशर्फ़ी को। शिकारी चिड़ियों में मादा नर से कहीं तेज़ होती है। इसीलिये उसका दाम ज़्यादा होता है। जैसा काम वैसा दाम – इसलिये कोई तो सोलह पैसे को और कोई १६) रु० को।

कहावत है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात!' शिकरा बचपन से ही अपना अद्भुत साहस दिखाने लगता है। दूसरे पक्षी अगर घोंसले के पास आजायँ तो यह उस अवस्था में भी उनपर चोट किये बिना न रहे!

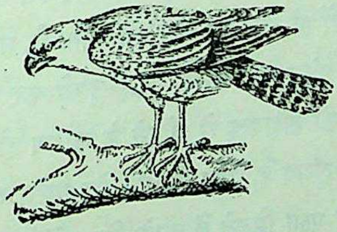

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लहटोरा

अँगरेज़ी में इसका नाम बहुत बुरा है । इसे कसाई-चिड़िया कहते हैं। अपने आहार के लिये यह झींगुर, टिड्डी, छिपकली और कभी-कभी छोटी-छोटी चिड़ियों का शिकार करता है। टेलीग्राफ़ के तार या बबूल की डाल पर यह बैठा रहता है और किसी कीड़े या पतिंगे को देखते ही उसपर टूट पड़ता है और उसे ले उड़ता है। अगर छोटा हुआ तो यों ही चीर-फाड़कर खा जाता है, नहीं तो किसी पेड़ के काँटे में उसे फंसा कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालता है। क्या इसी तरह काँटे की सहायता से चीरने के कारण ही यह कसाई कहा जाता है ? बहुत संभव है, ऐसा ही हो। ग्रेट ब्रिटन और अमेरिका में इस जाति के जो पक्षी मिलते हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करते, आनेवाले दिनों के लिये भी कुछ जमा करते जाते हैं। घोंसले के पास ही कहीं कांटेदार झाड़ी में उनका भोजन-भंडार रहता है। पर जिस ढंग से वे अपने लिये आहार-संचय करते हैं उसे देखते हुए इस स्थान को बूचड़-खाना या क़साई-बाड़ा ही कहा जा सकता है। वहाँ आपको सैकड़ों-हज़ारों कीड़े-मकोड़े और छोटी-छोटी चिड़ियों के बच्चे, तेज़-से-तेज़ कांटे में—माला की मनियों की तरह—पिरोये हुए मिलेंगे। कहते हैं कि इतने अधिक जीवों का यह इस तरह संहार किया करता है कि उनमें से कितने ही रोज़ सड़-गल जाते हैं और इसके खाने के भी काम नहीं आते!

आकार में यह बुलबुल से कुछ छोटा होता है। इसकी आदत सीधे डटकर बैठने की होती है। उस समय इसकी लम्बी-सी पूंछ नीचे लटकती रहती है। चोंच से आँख होकर गरदन के ऊपर तक इसके एक चौड़ी काली धारी होती है। यह धारी प्रायः प्रत्येक उप-जाति में पाई जाती है। लहतोरा बबूल के पेड़ पर बैठना और घोंसला बनाना ज़्यादा पसन्द करता है।

उत्तर भारत में इसकी तीन उपजातियाँ मिलती हैं। एक तो सफ़ेद या दुधिया लहतोरा है। यह औरों की अपेक्षा बड़ा होता है। यों तो इसका रंग भूरा-सा है, पर इसके नीचे के हिस्से और डैनों के बहुत से पर सफ़ेद होने के कारण, यह उड़ते समय सफ़ेद-सा दीखता है। इसीलिये इसे सफ़ेद लहतोरा कहते हैं। दुम और डैनों में कुछ काले पर होते हैं। यह मैना के बराबर होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी उपजाति का नाम पचनक है। यह बुलबुल से कुछ बड़ा होता है। रंग इसका प्रायः सफ़ेद या दुधिया लहतोरा का-सा होता है। पर इसकी पीठ कत्थई रंग की होती है।

तीसरी उपजाति को मटिया या कजला लहतोरा कहते हैं। इसकी पीठ भी कत्थई रंग की होती है, पर इसकी पूंछ में सफ़ेद पर नहीं होते। तीनों उपजातियों की चोंच बड़ी मज़बूत होती है।

गरमी के दिनों में यह पक्षी घोंसला बनाता है। उसके लिये यह घास-फूस, चिथड़े और टहनियों को जुटाता हैं और प्रायः पेड़ के धड़ के पास अपना बेढंगा घोंसला तैयार करता है। अंडों की संख्या तीन या चार होती है। उनकी 'ज़मीन' तो सफ़ेद होती है पर उनपर बादामी और बैंगनी रंग की बहुत-सी बुँदकियाँ होती हैं। चौड़े मुँह के पास ज़्यादा चित्तियाँ पाई जाती हैं और कभी-कभी वे गोलाकार होती हैं। अगर आप लहतोरा के अंडे देखने की चेष्टा करें तो बहुत सम्भव है कि इस पक्षी को किसी प्रकार की आपत्ति न होगी, यह आपको देखते ही हट जायेगा। पर अगर बच्चे हुए तो वह जल्दी हटने का नाम न लेगा और सम्भवतः आपके कार्य में बाधा भी डालेगा। उस समय यह इतना निडर हो जाता है कि मनुष्य के पास खड़ा रहने पर भी अपने बच्चों को खिलाता है, किसीकी ज़रा भी परवा नहीं करता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महलाठ

यों तो यह पक्षी इसी नाम से प्रसिद्ध है, पर संभव है आपके नगर या गाँव में इसे और ही कुछ कहते हों। अवध में इसे मुटरी, बिहार में कोकैया, सिन्ध में महताब और बंगाल में हांडिचांचा या टाकाचोर कहते हैं। प्रायः डेढ फ़ीट लम्बी चिड़िया है जिसमें एक फ़ुट को केवल पूँछ ही होती है। नर और मादा एक-से ही दीखते हैं। सिर, गरदन और छाती का रंग कुछ बादामीपन लिये हुए काला होता है। बाकी शरीर खेरा या कत्थई। दुम और डैने कुछ स्याही लिये हुए सफ़ेद होते हैं। दुम के बीच के दो पर सबसे बड़े और दोनों किनारों के दो पर सबसे छोटे होते हैं। चोंच काली होती है।

भारतवर्ष में इसकी दो मुख्य उपजातियाँ हैं। एक तो दक्षिण भारत, उड़ीसा और सिन्ध के अलावा अफ़गानिस्तान से गढ़वाल तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाई जाती है। दूसरी—गढ़वाल से आसाम तक। संयुक्तप्रान्त और बिहार में दूसरी उपजाति ही मिलती है। प्रायः सभी बातों में दोनों समान होती हैं। पर पहली का रंग उतना गाढ़ा नहीं होता जितना दूसरी का।

महलाठ साहसी पक्षी है। काफ़ी होशियार भी है। प्रायः पेड़ पर ही रहता है। और वहीं इसे कीड़े-मकोड़े मिल जाते हैं। कभी-कभी उड़ते हुए शिकार करता है और ज़रूरत पड़ने पर नीचे भी उतर आता है। ज़मीन पर यह कुछ तृणों के बीज खाता है, साथ ही छिपकलियों की भी संख्या घटाता है। कभी-कभी ज़िन्दा साँप भी चोंच में पकड़ कर कलेवा करने के लिये कहीं ले जाता है।

जब फलाहार को इच्छा होती है तब लुकाट, केले या आड़ू पर भी टूट पड़ता है और बड़े खेद की बात यह है कि उनकी छोटी-छोटी डालियों या टहनियों को अपनी हरकतों से तोड़ डालता है। इसकी गिनती उन पक्षियों में की जाती है जो चोर-लुटेरे हैं। दूसरी चिड़ियों के अण्डे-बच्चे चुराने में सिद्धहस्त है। खासकर फ़ाख़ता के कितने ही बच्चे हर साल इसका मुखग्रास बनते हैं। मकोड़ों को यह बड़े चाव से खाता है और मिलजाने पर चमगादड़ को भी नहीं छोड़ता। शोर मचाने में यह भी एक नम्बर है। जहाँ ज़रा भी उत्तेजित हुआ कि ज़ोर-शोर से बोलने लगा। जब ख़ुश रहता है तब मीठे बोल भी बोलता है। यों तो इसकी कई बोलियाँ हैं, पर विशेषकर 'कोक-ली' 'कोक-ली' करता रहता है।

महलाठ के घोंसला बनाने का और अण्डे-बच्चे होने का समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फरवरी से जुलाई तक है—दक्षिण में फरवरी से मार्च और उत्तर में मई से जुलाई तक। यह घोंसला किसी ऊँचे पेड़ की फुनगी के पास बनाता है और उस समय बहुत ज़्यादा शोर करता है। महलाठ के घोंसले अधिकतर आम के पेड़ों पर मिलते हैं, पर नीम, पीपल, बबूल, शीशम इत्यादि पर भी पाये जाते हैं। दूसरे पक्षी उसी पेड़ पर या उसके आस-पास घोंसला बनाने का आयोजन करें तो इसे बहुत बुरा लगता है। इसका अपना घोंसला घने पत्तों से छिपा रहता है। उसकी चौड़ाई प्रायः सात इंच होती है। जिस घर में अण्डे रहते हैं उसका मुँह प्रायः पाँच इंच चौड़ा और उसकी गहराई तीन-चार इंच होती है। घोंसला टहनियों और घास-फूस से बनता है पर होता है बड़ा बेढंगा! उसे बनाने का काम नर और मादा दोनों ही करते हैं। मादा प्रायः चार अण्डे देती है। कभी-कभी इनकी संख्या छः तक पहुँच जाती है। सुनते हैं दक्षिण भारत में इसके अण्डे दो-ही-तीन होते हैं। इसके अंडों की दूसरी विचित्रता यह है कि रंग-बिरंग के होते हैं। कहीं सफ़ेद, कहीं भूरे, कहीं हलके पीले, कहीं गुलाबी और कहीं हरे! उनपर प्रायः लाल, पर कभी-कभी हरे, बादामी या बैंगनी रंग की—बुँदकियाँ भी होती हैं। मालूम नहीं क्यों इसके अण्डों के रंग में इतनी विभिन्नता पाई जाती है। कुछ लोगों का ख़याल है कि मादा की उम्र के हिसाब से रंग बदलता है, पर बात ऐसी नहीं है। उत्तर बिहार में इसके अण्डों का रंग प्रायः हरा होता है, और संयुक्त प्रान्त में नारंगी। बहुत सम्भव है आबोहवा का उनके रंग पर प्रभाव पड़ता हो। अण्डे सेने में भी नर-मादा सहयोग करते हैं। बच्चों का रंग माँ-बाप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से मिलता है, पर उनकी पूँछ बहुत छोटी होती है। बच्चे चुपचाप नहीं रह सकते, खाने के लिये शोर मचाते ही रहते हैं। माँ-बाप ढोले, गुबरैले पकड़कर ले आते हैं और उन्हें खिलाते हैं। घोंसला छोड़ने के कुछ दिन बाद तक वे माँ-बाप के पिट्ठू बने रहते हैं। पर पक्षियों के नियमानुसार उन्हें शीघ्र ही अपने पैरों खड़ा होना पड़ता है। बरसात में कीड़े-मकोड़े काफ़ी मिलते हैं। इसलिये माँ-बाप को उन्हें साथ ले चलने और शिकार कर उनका पेट पालने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती। पर बरसात बीती और कीड़ों की कमी हो चली। अब सब अपनी-अपनी फ़िक्र करने लगे। पर प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि बच्चों या नौजवानों को स्वावलम्बी बनते देर नहीं लगती। माँ-बाप से अलग होते ही वे अपनी समस्या आप हल करने लगते हैं।

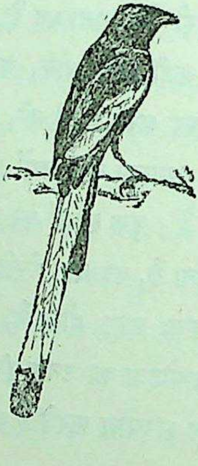

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछरिया

मछरिया मक्खीमार चिड़ियों में हैं। यह मछलियों का नहीं किन्तु भुनगों या मक्खियों का शिकार करती है। इस जाति के सभी पक्षी छोटे होते हैं, प्रायः गौरैये के आकार के। इनकी चोंच चौड़ी होती है, जिससे उड़ते हुए शिकार को आसानी से पकड़ सकें। इन्हें आप नीचे ज़मीन पर शायद ही कभी देख सकें। प्रायः पेड़ की डाल पर या सरकारी तार पर बैठी मिलेगी। मौका पाते ही शिकार पर टूट पड़ती है, और उसे चोंच में दबा कर अपनी जगह लौट आती है।

मछरिया की हुलिया हम इस प्रकार लिखा सकते हैं--ऊपर के अंग बादामी या काले रंग के और नीचे के सफ़ेद; गले पर कुछ चित्तियाँ; ललाट सफ़ेद और ललाट से आँख के ऊपर होकर गरदन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक कुछ चौड़ी सफ़ेद धारी; डैनों के थोड़े से पर और पूंछ का सिरा भी सफ़ेद।

बड़ी ही चंचल चिड़िया है, कभी स्थिर रहना नहीं चाहती। जब शिकार से फ़ुरसत मिलती है तब पेड़ की डालों पर फुदकती फिरती है। इसकी आदत है कि जहाँ कहीं जा बैठी वहीं अपनी पूंछ के परों को इस तरह फैला दिया कि वह किसी पंखे-सी दीखने लगी और ख़ुद नाचने लगी। नाचती ही नहीं, गाती भी है। पक्षियों में मनुष्यों की ही तरह कुछ तो बहुत ही चुलबुले होते हैं और कुछ इतने गंभीर कि मनहूस-से मालूम पड़ते हैं। मछरिया इस सिद्धान्त को माननेवाली है कि ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है—इसलिए यह मुर्दादिल होकर जीना पसन्द नहीं करती। अंगरेज़ी में इसका नाम कुछ लम्बा-चौड़ा है। उससे दो बातें सूचित होती हैं। एक तो यह कि इसकी भौं सफ़ेद होती हैं, और दूसरी यह कि इसकी पूंछ पंखे के आकार की होती है।

यह अप्रैल के लगभग अपना घोंसला बनाती है। आप उसे प्रायः किसी आम या अमरूद के पेड़ पर पायेंगे, ज़मीन से कुछ ही ऊँचाई पर। उसकी शकल प्याले की-सी होती है। घास-फूस में मकड़ी का जाला लपेट कर यह उसे तैयार करती है। जाला प्रायः इतना अधिक होता है कि घास-फूस नज़र ही नहीं आता। मादा तीन अंड़े देती है। उनका रंग दूध का-सा होता है और उनके चौड़े मुँह के पास बादामी रंग की कुछ बुंदकियाँ होती हैं।

गाँवों में एक दूसरी मक्खीमार चिड़िया देखी जाती है, जिसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़र्द फुदकी कहते हैं। उत्तर भारत में यह जाड़े के दिनों में आती है। इसका सिर और छाती भूरे रंग की और बाकी शरीर कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है। हाँ, पूंछ का रंग बादामी। यह गौरैये से भी छोटी होती है। ज़र्दफुदकी और बातों में तो मछरिया के समान है, पर न तो दुम को उसकी तरह फैलाती है, न अलाप भरती है। दिनभर ज़ोरशोर से यही बोलती रहती है कि "फेंक-वही फेंक-वही"। यह अपना घोंसला इधर नहीं बनाती। उसका समय आने पर पहाड़ों की ओर चल देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह बुलबुल

इसके और भी कई नाम हैं जैसे हुसैनी बुलबुल, सुल्ताना बुलबुल, दूधराज इत्यादि। आकार-प्रकार में यह बहुत-कुछ बुलबुल से मिलता-जुलता है, पर है यह मक्खीमार जाति का। भारतवर्ष में पचास से भी अधिक प्रकार के मक्खीमार पक्षी मिलते हैं। इनमें सबसे प्रधान शाह बुलबुल है। यह अफ़गानिस्तान से सीलोन तक पाया जाता है। पर इस देश के ही भीतर स्थान बदलता रहता है। संयुक्त प्रान्त में शीतकाल बिताकर गरमी के दिनों में और कहीं चल देता है। उत्तर बिहार में यह मार्च के अन्त में आता है और प्रायः अक्तूबर तक रहता है। पर एक बात है। जाते समय सब-के-सब नहीं चले देते। कुछ रह जाते हैं, इसीलिये कहीं-कहीं यह साल-भर देखा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

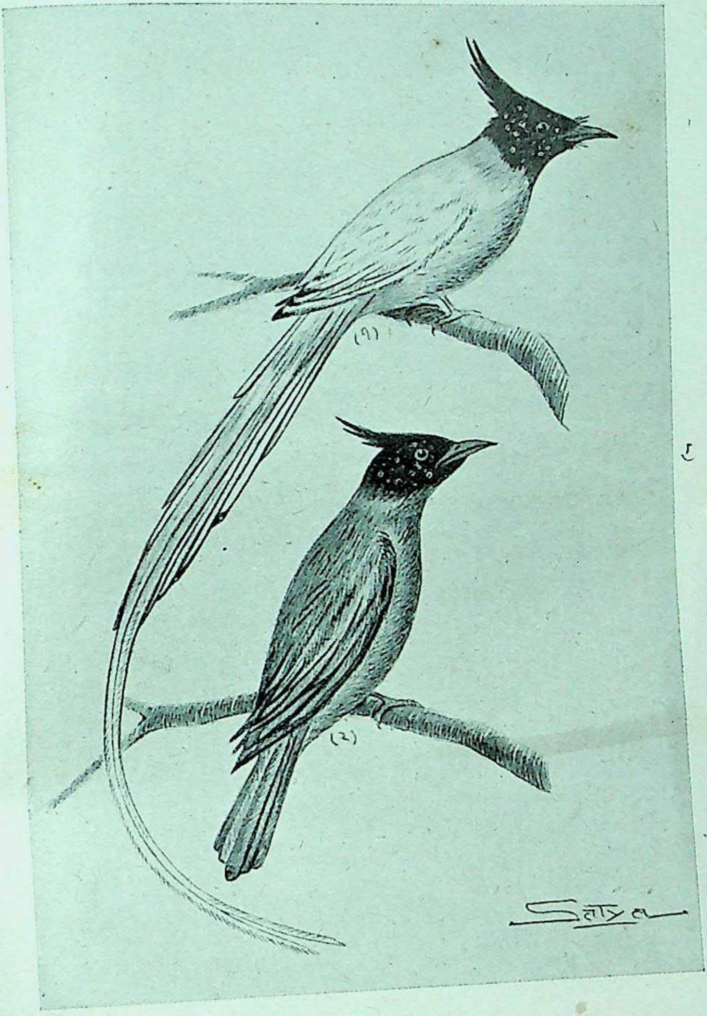

शाहबुलबुल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह बुलबुल बड़ा ही सुन्दर पक्षी है। इसके सिर पर भी चोटी या कलगी होती है। बचपन में सिर और चोटी का रंग काला रहता है, और नीचे के हिस्सों का सफ़ेद-सा। बाकी शरीर का रंग बादामी या कुछ लाल। मादा का तो यही रंग रह जाता है। पर नर के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। दूसरा वर्ष चढ़ते ही वह अपने पर बदलता है। उस समय उसकी पूँछ के बीचवाले दोनों पर प्रायः १६ इंच लंबे हो जाते हैं, शरीर से लम्बाई में प्रायः दूने! तीसरे वर्ष इसके लाल या बादामी पर सफ़ेद होजाते हैं। हाँ सिर और चोटी का रंग काला ही बना रहता है। थोड़े समय तक नर का रंग कुछ सफ़ेद और कुछ बादामी रहता है। चौथे वर्ष धड़ और दुम बिलकुल सफ़ेद हो जाती हैं, और यह रंग उसके बाद भी रह जाता है। अपनी लम्बी दुम के कारण यह विशेष सुन्दर दीखता है। हवा में वह किसी गुड्डी या पतङ्ग की पूँछ की तरह फड़फड़ाती चलती है!

शाह बुलबुल के पैर कमज़ोर होते हैं। यह ज़्यादा चल फिर नहीं सकता। उड़ते हुए ही शिकार को पकड़ता है। मक्खी, खटकीड़ा, चींटी, कोड़े-मकोड़े यही इसके खाद्य पदार्थ हैं। इसमें स्फूर्ति की कमी नहीं। मछरिया की तरह जानदार होता है, बराबर ख़ुश रहता है। अपनी खुशी ज़ाहिर करने के लिये कण्ठ खोल कर गाने लगता है। हां, हम यह ज़रूर कहेंगे कि कभी-कभी इसकी बोली कानों को कर्कश लगती है।

उत्तर भारत में शाह बुलबुल के अंडे देने का समय मई से जुलाई तक है। दक्षिण में मार्च से अप्रैल तक। घोंसला छोटे प्याले की शकल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का छिछला-सा होता है। घास-फूस को मकड़ी के जाले से बांध कर ही यह उसे तैयार करता है। उसमें कभी-कभी घोड़े की पूंछ के बाल भी मिलते हैं। घोंसला प्रायः आम के दरख्त पर मिलता है। अंडों की संख्या तीन-चार होती है और उनका रंग गुलाबी। उनपर कुछ लाल-लाल बुंदकियां भी होती हैं। नर और मादा दोनों बारी-बारी से अंडे सेते हैं और बच्चों को खिलाने-पिलाने में भी दोनों एक दूसरे का हाथ बंटाते हैं। जिस समय नर अंडे सेता है उस समय उसकी लंबी लहरदार पूंछ घोंसले से नीचे लटकती रहती है।

हम यह कहना भूल ही गये कि शाह बुलबुल की नाक के ऊपर कुछ लंबे-से बाल होते हैं, जो कभी-कभी चोंच के सिरे तक पहुँच जाते हैं।

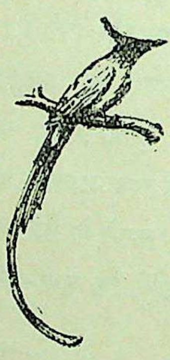

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चंडूल

इस जाति के पक्षी आसमान में गाने के लिये प्रसिद्ध हैं। खूब ऊपर चले जाते हैं और वहीं अलापने लगते हैं। आपने इसको किसी शौकीन के पिंजरे में देखा होगा। वास्तव में ऐसे पक्षी को क़ैद रखना बेरहमी है। पिंजरे में यह कभी दिल खोलकर नहीं गाता। उसके लिये तो इसे खुली हवा चाहिए और ज़मीन आसमान के बीच काफ़ी ऊँची जगह चाहिये। अँग्रेज़ी के महाकवि 'शेली' ने जिस Skylark को सम्बोधन कर अपनी वाणी को अमर कर दिया है वह इसी जाति का है, पर साधारण चंडूल की तरह उसके सिर पर चोटी नहीं होती। हाँ, वह इसकी अपेक्षा बहुत दूर ऊपर जा सकता है और इससे कहीं अच्छा गा भी सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकार में चंडूल गौरैये से कुछ ही बड़ा होता है, पर उसकी अपेक्षा दुबला-पतला दीखता है। इसका रंग खाकी होता है। शरीर पर कुछ पीले और कुछ काले-से चिह्न भी पाये जाते हैं। सिर पर छोटी-सी चोटी होती है। ज़मीन से तीस-चालीस फ़ीट ऊपर उठकर यह गाने लगता है, और थोड़ी देर बाद गाते हुए नीचे आ-जाता है।

इसका घोंसला देखना हो तो गरमी के दिनों में उसकी तलाश कीजिए। घास-फूस का बना होता है। पर कभी-कभी उसमें बाल या पशम या चिड़ियों के नरम पर भी पाये जाते हैं। आकार में छोटा-सा छिछला प्याला समझिए। चंडूल अपना घोंसला पेड़ पर नहीं ज़मीन पर बनाता है और उसकी बनावट ऐसी बेतरतीब होती है कि हाथ में उठाते ही उसके ताने-बाने अलग-अलग होने लगते हैं। मादा एक बार प्रायः तीन अंडे देती है। इनका रंग सफ़ेद-सा होता है।

अगिया

अगिया भी इसी जाति का है। पड़ती ज़मीन में अगर कुछ झाड़ हों तो आप वहाँ इसकी तलाश कर सकते हैं। इसके चोटी नहीं होती। डैनों का रंग कुछ कत्थई होता है, जिसे आप इसके उड़ने के समय देख सकते हैं। इसका स्वभाव यह है कि किसी झाड़ पर जा बैठेगी। वहाँ से उड़कर प्रायः बीस फ़ीट ऊपर चली जायगी, और कुछ बोलती हुई फिर अपनी जगह आ जायगी। एक या दो मिनट विश्राम कर फिर उड़ेगी—प्रायः घण्टे-भर यही सिलसिला जारी रहेगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जुठौली

इस प्रसंग में एक और छोटी चिड़िया का उल्लेख करना है, जिसे कहीं द्योरा, कहीं जुठौली कहते हैं। यह भी पड़ती ज़मीन में ही रहती हैं। इसे आप प्रायः झुण्ड में ही पायेंगे—सात या आठ एक-साथ। यह गौरैये से बहुत छोटी होती है पर चोंच वैसी ही मोटी समझिये। पैर छोटे होते हैं, और शरीर चौड़ा या चिपटा-सा। नर और मादा का रंग एक-सा नहीं होता। मादा बादामी रंग की होती है। नर का सिर भूरा होता है, पीठ हलके बादामी रंग की। नीचे के हिस्से खैर के रंग के—प्रायः काले होते हैं। आधी गरदन भी इसी रंग की होती है। और ठोड़ी से आँख तक एक काली धारी होती है। यह चिड़िया ज़मीन पर बैठी रहती है और बीच-बीच में उड़के कुछ ऊपर जाती और फिर नीचे आती है।

सभी प्रकार के चंडूल कीड़े-मकोड़े और तृण के बीज खाकर रहते हैं।

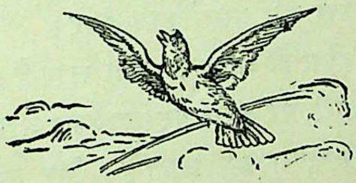

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीतर

तीतर, बटई, लवा न बांचे
सारस, कूज, पुछार जो नाचे।

—जायसी

यूरोप और एशिया में शायद ही कोई देश हो जहाँ तीतर न पाया जाता हो। भारतवर्ष में इसकी दो उपजातियाँ मिलती हैं—एक तो चितकबरा तीतर और दूसरा काला तीतर।

चितकबरा तीतर ही अधिकतर पाया जाता है। यों तो इसका रङ्ग बादामी होता है, पर शरीर पर कुछ स्याह और सफ़ेद धारियों के होने से यह चितकबरा कहा जाता है। सिर पर ऐसी धारियाँ नहीं होतीं—उसका रङ्ग कुछ कत्थई-सा होता है। डैनों के कुछ पर भी कत्थई रंग के होते हैं और पैर लाल।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत ही चंचल पक्षी है। उड़ने की शक्ति तो कम होती है, पर दौड़ने में कमाल करता है। इसके डैने छोटे होते हैं, और शरीर भारी। शायद यही कारण है कि तेज़ी से उड़ नहीं सकता। यह गेहूँ या धान के खेतों में जाल से फँसाया जाता है।

तीतर का आहार है—कीड़े-मकोड़े और बीज। जाड़े के दिनों में पांच-छः तीतर एक झुंड में चलते-फिरते पाये जाते हैं और शिकार के लिये खेतों में जा पहुँचते हैं!

सुबह-शाम तीतर ज़ोर-शोर से 'पतीला, पतीला' बोलता है। कुछ लोगों को इसकी बोली बहुत प्यारी लगती है और वह इसीलिये इसे पालते हैं। पर इसमें और भी दो गुण होते हैं, जिनके कारण यह कुछ लोगों के दिल में घर कर लेता है। एक तो यह अपने स्वामी का ऐसा अनुरक्त भक्त हो जाता है कि छाया की तरह उसके पीछे-पीछे लगा रहता है। दूसरे तीतर का नर लड़ने में बहादुर होता है और बात-की बात में ख़म ठोंक कर दूसरों से भिड़ पड़ता है। आपने देखा होगा—तीतर के शौकीन हाथ में पिंजरा लिये एक अजीब आन-बान से जा रहे हैं और तीतर उन के पीछे-पीछे दौड़ रहा है।

तीतर के अंडे देने का समय मार्च से जून तक है। कभी-कभी मादा सितम्बर और नवम्बर के बीच दूसरी बार अंडे देती है। घोंसला ज़मीन में गड्ढा-सा खोद के तैयार किया जाता है। कभी-कभी उसमें थोड़ी घास भी बिछी रहती है। अंडों की संख्या छः से नौ तक होती है, और उनका रंग प्रायः सफ़ेद होता है।

काला तीतर देखने में कम पाया जाता है। नाम ऐसा होने पर भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह पूरा काला नहीं होता। काले परों पर बहुत से सफ़ेद और बादामी रंग के दाग़ या धब्बे होते हैं। नर के गले में कुछ लाल रंग की चौड़ी कंठी-सी होती है। मादा देखने में नर जैसी खूबसूरत नहीं होती। चितकबरा तीतर से इसका बोल बिलकुल भिन्न होता है। कुछ लोगों का कहना है कि यह "लहसुन-प्याज-अदरख" बोलता है। पर दूसरे कहते हैं कि नहीं, इसकी बोली है "सुभान-तेरी-कुदरत"! मालूम नहीं सच्ची बात क्या है।

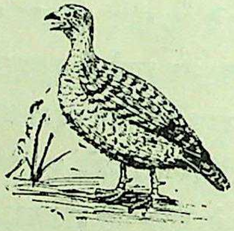

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बटेर

बटेर छोटी-सी चिड़िया है जो तीतर की तरह धान, गेहूँ इत्यादि के खेतों में पाई जाती है। बराबर धूप से बचना चाहती है। आकार में गौरैये से बड़ी नहीं होती। रंग बहुत कुछ कत्थई होता है, पर पीठ पर सफ़ेद धारियाँ होती हैं। सुनते हैं यह भी ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

बटेर को हम अपने गाँव में सालभर नहीं देखते। यह सिर्फ़ जाड़े के दिनों में नज़र आती हैं। बड़ा डरपोक पक्षी है। मनुष्य की आँखों से ओझल रहना चाहती है, फिर भी इसकी जान नहीं बचती। बात यह है कि इसका मांस बड़ा पौष्टिक समझा जाता है इसलिये लोग खोज-खोज कर इसे फँसाते या मार डालते हैं। खेतों में बटेरें अक्सर जाल में फँसाई जाता हैं।

बटेर हिन्दुस्तान से अरब तक मिलती है। कहीं-कहीं लोग इसे लड़ाने के लिये भी पालते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनमुर्गी

यह चिड़िया आकार-प्रकार में छोटी मुर्गी से मिलती-जुलती है। इसीलिये इसे बनमुर्गी कहते हैं, पर यह रहती है पानी के किनारे और वहीं शिकार भी करती है। आपके गाँव में अगर कोई तालाब या नदी हो और उसके आस-पास झाड़ी या बंसवाड़ी हो तो आपको उसमें बनमुर्गी मिल सकती है। यों तो यह दूर से काली-सी दीखती है, पर इसका सारा शरीर काला नहीं होता। मुँह, गला और छाती सफ़ेद, चोंच का रंग हरापन लिये हुए, दुम के नीचे कुछ लाल पर—यही थोड़े में इसकी पहचान है। नर और मादा देखने में एक-से ही होते हैं। दुम को यह बराबर उठाये चलती है। इसी लिये आप नीचे के लाल परों को आसानी से देख सकते हैं। बंगाल में इसे शायद 'डाहुक' कहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनमुर्गी बड़ी सतर्क चिड़िया है। जहां इसे मालूम हुआ कि कोई इसकी ओर एक टक देख रहा है, झट झाड़ी में जा घुसी। पर इसे डरपोक नहीं कह सकते। लोग जल में स्नान कर रहे हैं और किनारे बनमुर्गियां निर्भय निःशंक विचरण कर रही हैं और परस्पर बातचीत कर रही हैं, ऐसा दृश्य प्रायः देखने में आता है।

इसका चीत्कार कभी-कभी कड़ा भयंकर होता है। कक-कक, कोआ-कोआ, करते करते यह कुक-कुक करने लगती है। बरसात में खास कर यह ज़ोर-शोर से बोलती है। संभव है, बच्चों के लालन-पालन के दिनों में यह हर्षध्वनि करती है। पर इसकी बोली बड़ी ही कर्कश होती है। रात को तो कभी-कभी लोगों को इसका पड़ोस में रहना बड़ा ही अखरता है।

जल के किनारे चरनेवाले पक्षी संध्या-समय उड़ कर अपने-अपने घर चले जाते है। बनमुर्गी उड़ने में बहुत कमज़ोर होती है, इसीलिये दूर नहीं जा सकती। जहां दिन भर शिकार करती है, वहीं रात बिताती है। बैशाख से ही घोंसला बनाने लगती है। घोंसला झाड़ी, बंसवाड़ी में या ताड़ के पेड़ पर होता है। आप पूछेंगे कि जब उड़ने में कमज़ोर है तब इतने ऊँचे पेड़ पर अपनी अटारी क्यों बनाती है? वास्तव में वह उड़ कर वहां नहीं जाती। ताड़ के पेड़ पर चढ़ जाना इसके लिये कठिन नहीं, इसलिये जो काम डैनों से नहीं निकाल सकती वह पैरों से निकालती है। घोंसला बड़ा-सा होते हुए भी बेढंगा होता है। वह वृक्ष की टहनियों का बना होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मादा चार अंडे देती है। इनका रंग गुलाबी लिये हुए सफ़ेद होता है, पर इनपर लाल, बैंगनी और बादामी रंग की बुंदकियां होती हैं। बच्चे बिलकुल काले होते हैं। अंडों से निकलते ही घूमने-फिरने लगते हैं। इनके संबन्ध में एक बात कुछ आश्चर्य की है। इन्हें उड़ना देर से आता है, पर तैरना बहुत पहले आ जाता है। प्रश्न यह है कि ये पेड़ से नीचे कैसे उतरते हैं? कुछ लोगों का खयाल है कि मां इन्हें अपनी चोंच या चंगुल में पकड़ कर या पीठ पर चढ़ा कर नीचे ले आती है। पर किसीने यह अपनी आँखों देखा नहीं है। जेठ या आषाढ़ में बनमुर्गी के बच्चे निकलते हैं। उस समय कुछ लोग इस बात की जाँच करें तो पता चल सकता है।

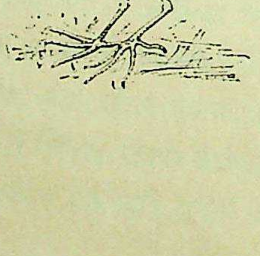

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टिटिहरी

विलपत ज्यों कुररी की नाईं

—तुलसी

यह पक्षी देखने में कम आता है; पर इस देश में शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इसकी बोली न सुनी हो। आबादी से यह प्रायः दूर ही रहता है। आप इसे या तो पानी के पास पायेंगे या ऐसे खेत में जिसकी फ़सल काटी जा चुकी है। इसके परों में कुछ काले और कुछ सफ़ेद होते हैं। नीचे का हिस्सा सफ़ेद समझिए। गरदन पर दोनों ओर दो सफ़ेद धारियाँ होंगी जो ऊपर आँखों तक चली गई होंगी। पूंछ और डैनों में भी ऐसी ही सफ़ेद धारियाँ मिलेंगी। इसकी चोंच लाल होती है और आँखों के सामने का चमड़ा सिमट कर गुलथी के रूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में नज़र आता है। इसका रंग किसी पक्षी में लाल और किसी में पीला होता है। वास्तव में पीली गुलथीवाली टिटिहरी की जाति ही अलग है। आँख के पास की गुलथी के रंग को छोड़ और बातों में दोनों समान-ही होती हैं। टिटिहरी की बोली विलाप-सी जान पड़ती है और यही कारण है कि यह अपशकुन मानी जाती है। टिटिहरी और कुररी एक ही पक्षी के नाम हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा नहीं मानते।

यह पक्षी ज़मीन पर दौड़कर कीड़ों का शिकार करता है। इसके अंडा देने का समय मार्च से अगस्त तक है। पर इसके लिये नर या मादा कहीं घोंसला नहीं बनाती। यह ज़मीन पर ही अंडे देती है। हाँ, उनकी रक्षा करने के लिये इन्हें विशेषतः सावधान रहना पड़ता है। अप्रैल या मई के महीने में आप कहीं टिटिहरी को देर तक बैठे देखें तो समझ जाइए कि वह अपने अंडे स रही है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका एक छोर नुकीला-सा होता है। चारों अण्डे इस हिसाब से रक्खे जाते है कि उनके नुकीले छोर आपस में मिल जाते हैं और उनके संयोग से + चिह्न-सा बन जाता है। बच्चे बहुत सुन्दर होते हैं और जन्म लेते हो दौड़ने लगते हैं। पर अगर आप उन्हें छेड़ेंगे तो उनके माँ-बाप अपनी रुलाई सं आपको रुलाये विना न रहेंगे। दिन में न हो सका तो रात को आपके मकान के ऊपर मंडरायँगे और अपने करुण-क्रन्दन से आपको और आपके पड़ोसियों की नींद उचटा देंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजालाल

यह झुंड में चलनेवाली छोटी चिड़िया है। आकारमें प्रायः गौरैये के वराबर समझिये, यद्यपि इसकी पूंछ कुछ ज्यादा लम्बी होती है। पेड़ की ऊँची डालों पर ही समय बिताती है। पर बड़ी चंचल चिड़िया है, इसलिये परिव्राजकों की तरह चलती-फिरती रहती है। कहीं आसन जमाके नहीं बैठती। पाठक अतिथि-शब्द का अर्थ ज़रूर जानते होंगे। वास्तव में अ-तिथि वही है जो किसी जगह एक रात से अधिक न ठहरे। राजालाल भी हमारे गांव का प्रायः ऐसाही अतिथि है। हाँ, जब घर बांधने के दिन आते हैं तब आपको, कुछ समय के लिये, कहीं स्थिर होकर ज़रूर रहना पड़ता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि राजालाल झुंड में चलते हैं। पर किसी भी झुंड में नर, एक या दो से अधिक नहीं होता। इससे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुमान किया जा सकता है कि इस जाति के पक्षियों में पुरुष कम, स्त्रियां अधिक हैं।

नर के शरीर का अधिकांश खाकी या मटमैले रंग का होता है। छाती पर एक लाल धारी-सी नज़र आती है। पूंछ और डैनों के भी कुछ पर लाल होते हैं। मादा के रंग में थोड़ी विभिन्नता पाई जाती है। उसकी ठोड़ी काली होती है और उसके कुछ पर ज़र्द या पीले।

राजालाल मार्च या अप्रैलके लगभग अपना घोंसला तैयार करता है। इसकी सुन्दरता देखते ही बनती है। बहुत पतली टहनियों को जुटा कर उन्हें मकड़ी के जाले से जकड़ देता है। घोंसला प्याला-सा दीखता है। अंडों की संख्या प्रायः तीन होती है। इनकी ज़मीन कभी बिलकुल सफ़ेद होती है कभी कुछ नीलापन लिये हुए। पर उसपर रंग-विरंग के दाग़ या चकत्ते पाये जाते हैं।

राजालाल, प्रायः ऊंची डालों पर ही शिकार किया करता है और यही कारण है कि यह देखने में कम आता है। पर है यह मनुष्य का परम उपकारी, क्योंकि यह कीड़ों-मकोड़ों का नाश करने-वालों में है। हम कभी-कभी इस बात को भूल जाते हैं कि हमारे अस्तित्व को क़ायम रखने में पक्षियों का भी हाथ है। एक विशेषज्ञ का तो कहना है कि अगर सब-के-सब पक्षी नष्ट हो जायँ तो मनुष्यजाति अधिक-से-अधिक नौ साल तक जीवित रह सकेगी। अर्थात् पक्षियों के न रहने के कारण, हानिकारक कीड़ों या पतंगों की संख्या इतनी अधिक हो जायेगी कि वे हमें नेस्त-नाबूद किये बिना न रहेंगे। मामूली मच्छड़ की कोई सन्तान नष्ट न हो तो एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या एक जोड़े से, सप्ताह भरमें, १६००० मच्छड़ हो जायेंगे। ग़नीमत है कि पक्षियों के आहार में, मनुष्य के ऐसे प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रु भी शामिल हैं और उस लिस्ट पर इनका स्थान काफी ऊंचा है। ग्रेट ब्रिटन में दोयल या दामा की जातिवाले पक्षियों की संख्या बीस लाख से पचास लाख तक बताई जाती है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि अप्रैल, मई और जून इन तीन महीनों में ही वहां के ये पक्षी ५०,०००,०००,००० से अधिक कीड़ों का कलेवा कर जाते हैं। अब हमारे पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि राजालाल जैसे पक्षियों को हम क्यों मनुष्य का परम हितकारी कहते हैं।

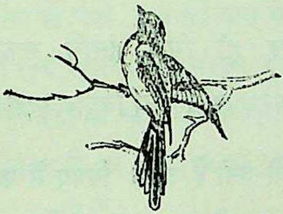

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बगला

मानसरोवर ही मिलैं हंसनि मुकता भोग,
सफरिन भरे 'रहीम' सर विपुल बलाकनि जोग।

जो सच्चे योगी-यती हैं उनके विषय में कहा जाता है कि वे संसार-मात्र से ध्यान समेटकर परमात्म-चिंतन करते हैं। वास्तव में एकाग्र-चित्त हुए बिना ऐसे कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। पक्षियों के लिये आध्यात्मिकता का कोई अर्थ नहीं। उनकी सारी इच्छायें, सारी क्रियायें भौतिक संसार से ही सम्बन्ध रखती हैं। उनके ध्यान का विषय बहुतकर वह भक्ष्य जीव या पदार्थ होता है जिससे उनकी जीवन-रक्षा हो सकती है। "ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यह बात उनके सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, पर यह ज़रूर है कि उन्हें जिसका दीदार चाहिये वह परमात्मा नहीं, परमात्मा का सिरजा हुआ, मेढक या मछली जैसा, कोई प्राणी है।

शान्ति और शिष्टता की मूर्ति बनकर, एक मटमैले रंग का पक्षी, बड़ी देर से झील के किनारे बैठा हुआ था। पैर पानी में थे, सिर दोनों कन्धों के बीच ढक-सा गया था, रंग-ढंग से जान पड़ता था कि वैराग्य के वशीभूत होकर यह विहंग, किसी कठोर साधना के लिये, ऐसी जगह आ बैठा है। न तो वह ज़रा भी हिलता-डुलता था, न इधर-उधर देखने का नाम लेता था। उसे देखकर यही कहना पड़ता था कि एकाग्रता या चित्त की वृत्तियों का निरोध हो तो ऐसा हो! पर अन्त में वह कुछ-का-कुछ निकला। एक मेढ़की सामने आते ही उसकी सारी कलई खुल गई। उसने अपनी पूरी गरदन फैलाके, लम्बी चोंच से उसे बात-की-बात में पकड़ लिया और उसका एक ही ग्रास बना डाला। अब मालूम हुआ कि जिसे देखकर हमारी वह धारणा हो रही थी वह बनावटी रंग-रूप था। यह सारी ध्यान-मुद्रा बगला-भगतजी की थी जिनसे हम अपने पाठकों को यहाँ परिचित करना चाहते हैं।

इसके डैने सफ़ेद होते हैं, पर जिस समय यह बैठा रहता है उस समय वे कुछ मटमैले परों से ढक जाते हैं। इसकी ठोड़ी, गला और छाती का कुछ अंश भी सफ़ेद होते हैं, पर उनपर बादामी धारियाँ पाई जाती हैं। इसकी आँखें पीली होती हैं, और चोंच तिरंगी, अर्थात् जड़ में नीली, बीच में पीली-सी और सिरे के पास

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

काली। इसके पैर हरापन लिये हुए धूसर रंग के होते हैं। गरमी के दिनों में पीठ का रंग कुछ लाल हो जाता है। इसकी नज़र बड़ी तेज़ होती है, यद्यपि भूल से कुछ लोग इसे अन्धा समझते हैं!

बगला शाकाहारी पक्षियों में नहीं है। मेढक, केकड़ा, छोटी मछली, पानी के कीड़े—बस ऐसे ही जीवों को इसका आहार समझिए। पानी से इसका रंग इतना मिलता-जुलता है और यह इतना शान्त या निस्तब्ध रहता है कि जलचर प्राणी भी भ्रम में पड़ जाते हैं और इसे कुछ और ही चीज़ समझकर निर्भय इसके पास चले आते हैं।

बगला शिकार तो अकेला ही करता है, पर रात को सोता है झुंड में। उस समय हम पचास-साठ बगलों को एकत्र देख सकते हैं। प्रायः ऐसे पेड़ पर रात बिताते हैं जो किसी झील या नदी के किनारे होता है। कभी-कभी अच्छी डाल पर सोने के लिये, आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते हैं। इनकी बोली कोंक-कोंक-सी होती है।

इनके घोंसला बनाने का समय अप्रैल या मई महीना है। एक ही पेड़ पर कई जोड़े घर बाँध लेते हैं। घोंसले के लिये इन्हें सिर्फ़ कुछ टहनियाँ जुटानी पड़ती हैं, पर उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वह अनाड़ी का बनाया हुआ है। अंडों की संख्या चार होती है और उनका रंग हरा-सा होता है। बच्चे आकार को छोड़ और बातों में माँ-बाप के ही समान होते हैं। बया भी अक्सर उसी पेड़ पर अपना झूला लगाता है जिस पर बगला अपना बंगला तैयार करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गाय-बगला

इस पक्षी को बगले का रिश्तेदार समझिए। हिन्दी में इसके और भी नाम हैं—जैसे सुखिया बगला, बादामी बगला, लाल बगला इत्यादि। मशहूर नाम गाय-बगला ही है। यह अक्सर गाय-बैल की पीठ पर बैठके या उनके साथ-साथ चलके शिकार करता है। उनके चलने-फिरने से जो कीड़े-पतिंगे घबरा कर इधर-उधर भागते हैं उन्हींको यह अपना मुख-ग्रास बनाता है। कितना चालाक है! शेर के शिकार में कभी-कभी ऐसे आदमियों की ज़रूरत पड़ती है जो हो-हल्ला मचा कर उसे प्रकट या प्रत्यक्ष होने के लिये बाध्य कर दें। गाय-बैल इस शिकारी के लिये वही काम करते हैं।

वर्षा-काल को छोड़ यह बराबर सफ़ेद बना रहता है। इसके पैर स्याह और इसकी चोंच पीली होती हैं। फिर इसे बादामी या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाल बगला क्यों कहते हैं ? बात यह है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से कुछ ही पहले यह अपने परों को बदल देता है। उस समय जो नये पर उगते हैं उनका रंग बादामी होता है। बरसात के दिनों में इसके सिर, गरदन और पीठ पर नारंगी रंग के कुछ ख़ास पर निकल आते हैं जो देखने में बड़े ही ख़ूबसूरत होते हैं। हमारे राजा-महाराजा अपनी पगड़ी या मुकुट में ऐसे ही पक्षियों के परों की कलगी लगाते हैं। इनकी सुन्दरता इस पक्षी के लिये संहारक सिद्ध होने लगी थी, पर सरकार ने अब क़ानून पास कर इसकी रक्षा की व्यवस्था कर दी है।

गाय-बगला किसानों का परम उपकारी है। जूँ-जैसे छोटे-छोटे कीड़े अक्सर ढोरों का ख़ून चूसा करते हैं। गाय-बगला इन सबको 'चुग' लेता है। पूसा में एक बार इस बात की परीक्षा की गई थी कि इसके आहार के कीड़ों में कितने ऐसे हैं जो खेती की दृष्टि से हानिकारक कहे जा सकते हैं। तीन पक्षियों के खाये हुए १६६ कीड़े बाहर निकाले गये थे। इनमें छः को छोड़ कर बाक़ी सब-के-सब उसी श्रेणी के थे। पर गाय-बगला छोटी मछली या मेढकी जैसे जीवों को भी हज़म कर सकता है। और बराबर ढोर के ही साथ रहता हो यह बात भी नहीं है। कभी सूअर पर कृपा करता है तो कभी मगर पर। किसीका कुटकी से पिंड छुड़ा देता है तो किसीका पिस्सू से।

गाय-बगला उन पक्षियों में है जिन्हें हम गोष्ठी-प्रिय कह सकते हैं। जब घर बाँधने के दिन आते हैं तब तो उसकी यह गोष्ठी-प्रियता और भी बढ़ जाती है। नदी के कछार या दलदल के पेड़ों पर रहने-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले तरह-तरह के पक्षियों को हम उस समय एकत्र पाते हैं। इतना ज़रूर है कि घोंसला बनाने में जैसा बगला है वैसा ही गाय-बगला! अंडों की संख्या तीन से पाँच तक होती है और उनका रंग भी वही होता है जो बगला-भगत जी के अँडों का।

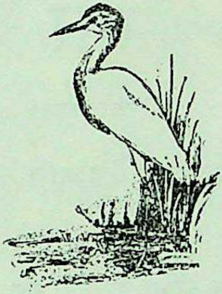

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोर

जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन-मोर

—भारतेन्दु

शिखिनि ! विरस-वदना हो बैठी तरु-शाखा पर तू कैसे ?
तेरे प्राण न देख श्याम को रोते हैं क्या मुझ जैसे ?

—"विरहिणी व्रजांगना"

कुछ लोगों को इस बात पर आपत्ति हो सकती है कि मोर जैसे पक्षी को इस पुस्तक में आख़िरी सीट दी गई है। लेखक उन्हें विश्वास दिलाता है, इसका कारण किसी प्रकार का द्वेष या असद्भाव नहीं है। न तो उसे कौए से दोस्ती है न केकी से दुश्मनी। बात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतनी ही है कि कौआ उसे "नित उठ दर्शन" देनेवालों में है और मोर उसके गाँव के इर्दगिर्द कोसों में नहीं है। भारतवर्ष के पक्षियों से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक में स्थान पाने का वह विशेष अधिकारी न होता तो हम उसकी चर्चा भी न करते। हमने प्रायः उन्हीं पक्षियों का परिचय दिया है जो हमारे गाँव में मिलते हैं। हाँ, अगर हम राजस्थान-निवासी होते तो पहला स्थान मोर को ही देते। मोर की रक्षा के विषय में राजपूताना सम्भवतः और प्रान्तों से आगे है। मरुभूमि को मोरभूमि कहना कुछ हद तक ठीक ही होगा।

एशिया महाद्वीप ही मोर की जन्मभूमि है—ख़ासकर भारतवर्ष और जावा। पूरब से ही यह पश्चिम को गया है और इधर की और कितनी ही चीज़ों की तरह बे-मिसाल साबित हुआ है। कहना चाहिए कि यह पूरब के उन मोतियों में से है जिनसे पश्चिम अपना दामन भरता आया है।

इसके रंग-रूप के वर्णन की चेष्टा करना एक प्रक़ार की धृष्टता है। हम तो यही मान लेंगे कि हमारे सभी पाठक उसे अपनी आँखों देख चुके हैं और उनके लिये उसका वर्णन अनावश्यक है। यह उन पक्षियों में है जो डील-डौल में बड़े और भारी-भरकम होते हैं। इसकी दो विशेषतायें हैं इसकी शिखा और इसकी पूँछ। वास्तव में हम जिसे पूँछ कहते है वह असली पूँछ नहीं है। इसे पूंछ का परदा या ओहार कहना चाहिए। मादा के यह आभूषण नहीं होता। इसमें कितनी ही 'आँखें' या चन्द्राकार बूटियाँ होती हैं जिनकी शोभा देखते ही बनती है। शिखा या चूड़ा नर और मादा दोनों के ही होती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। सिर, गरदन और छाती का रंग नीला होता है; असली दुम और डैनों का रंग कत्थई। मादा आम तौर से कुछ फीके रंग की होती है।

मोर का नाच मशहूर है। जिसने इसे अपनी आंखों नहीं देखा, वह प्राकृतिक जगत् का एक अनोखा दृश्य देखने के सुख से वंचित रहा। पर इस नाच का मर्म समझने के लिये पक्षी-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली एक ख़ास वात जानना आवश्यक है।

कबूतर गुटकता है, श्यामा गाती है, मोर नाचता है—इन क्रियाओं को आप निरर्थक न समझें। पशु-पक्षिओं को अपनी प्राण-रक्षा और वंशवृद्धि के लिये तरह-तरह के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। प्राणरक्षा का प्रश्न मुख्यतः आहार जुटने-जुटाने का प्रश्न है। इसलिये हम पक्षियों को सुबह से शाम तक (और उल्लू जैसे पक्षी को रात में) इस समस्या के हल में इतना मशगूल पाते हैं। पर विधि-विधान के पालन के लिये, उन्हें उदर-पूर्ति के बाद, इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर ध्यान देना पड़ता है कि उनकी जाति की सत्ता कैसे क़ायम रहेगी? अपनी संख्यावृद्धि के लिये सचेष्ट होना पक्षियों का सहज स्वभाव है। थोड़े में हम इसे पक्षियों के विवाह या दाम्पत्य का प्रश्न कह सकते हैं।

नर और मादा—थोड़े समय या बराबर के लिये—इस संबन्ध-सूत्र में बंधकर सृष्टि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। पर यह काम दोनों की अपनी मर्ज़ी, अपनी स्वीकृति से होता है। माँ-बाप इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते—सच तो यह है कि उन्हें इस बात की फ़िक्र भी नहीं होती कि उनके बच्चों का ब्याह कब, कहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और कैसे होगा । न तो बीच-बचाव के लिये किसी 'घटक' की ज़रूरत पड़ती है न लेन-देन की कोई 'ठहरौनी' होती है । मादा को रिझाने के लिये नर अपनी गुण-गरिमा और अपने प्रेम का प्रदर्शन करता है और वह प्राचीन भारतवर्ष की स्वयम्वरा स्त्री की भाँति, अपना पति आपही चुन लेती है ।

अपने प्रयत्न में नर-पक्षी की सफलता का अर्थ है उसका वंश-विस्तार और उसकी असफलता का अर्थ है उसकी वंश-हानि । यही कारण है कि ऐसे मामलों में सावधान रहनेवाली प्रकृति ने उसे मादा की अपेक्षा, विशेष रूपवान और गुणवान् बनाया है । इस नियम के अपवादों की संख्या बहुत छोटी है ।

कोयल, गौरैया, श्यामा, शाह बुलबुल, बया, मोर, मुर्गी आदि पक्षियों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि रंगरूप, वेशभूषा, डीलडौल में मादा नर को नहीं पा सकती । रंगों की जो बहार पुरुष के परों में पाई जाती है वह स्त्री के परों में नहीं । पक्षियों के दाम्पत्य का समय वसन्त-काल है । इस समय नर की सुन्दरता देखते ही बनती है । उसके परों के रंग प्रायः बदल जाते हैं और उनमें एक निराली चमक-दमक आ जाती है । हाँ, मोर जैसे पक्षी सालभर एक-रंग रहते है । कुछ ऐसे भी नर-पक्षी हैं जो वसन्तकाल में और ही तरह की 'कायापलट' दिखाते हैं । इनके परों में कोई अन्तर नहीं पड़ता पर इनके दूसरे अंग थोड़े समय के लिये अपना रंग कुछ बदल देते हैं । किसीकी चोंच बादामी से पीली हो जाती है और किसीकी चोंच के ऊपर एक गुलथी-सी निकल आती है । इस प्रकार सज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धज कर नर-पक्षी, अपने हावभाव से, मादा को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करता है, और विफल न हुआ तो उससे संबन्ध जोड़ कर गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है।

मोर के नाच को भी उसका हावभाव समझिए। मस्ती के आलम में पक्षी स्वभावतः गाते और नाचते हैं। ऐसी क्रिया के द्वारा नर प्रायः अपनी कामुकता प्रकट करता है और अन्त में मादा का प्रेम-पात्र बन जाता है।

एक साहब लिखते हैं:—

"शान-गुमान वाले मोर का वह नाचना देखो! मन्द मँथर गति से मादा के पास जाता है और अपने 'पुच्छ' के परों को फैला कर गोल फलक-सा बना देता है। कुछ क़दम पीछे हट कर वह मोरनी को पहले इस चित्र-पटल का धुँधला अंश देखने को देता है। फिर एक-ब-एक ऐसा चक्कर खाता है कि तसवीर की पटरी उलट जाती है—और ही नज़ारा दीखने लगता है! चमक-दमक से भरी हुई ये हज़ारों 'आँखें' कहाँ से निकल पड़ीं और घनघोर घटा के नीचे जगमगाने लगीं? एक-एक मोर-चन्द्रिका में नीलम और फ़ीरोज़ा हाथ लगते हैं। ऐसी मनोरम आभा इस संसार में और कहाँ मिल सकती है? मोर का साज-बाज सचमुच लासानी है"।

भारतवर्ष में मोर के घर बाँधने और अंडे देने का समय मार्च से अक्टूबर तक है। उत्तर भारत में प्रायः मार्च से मई तक और सिलोन को छोड़ अन्यत्र, वर्षा-काल में। इसका घर या घोंसला बहुतकर ज़मीन पर ही होता है, कभी किसी झाड़ी में, कभी किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दरख्त की छाँह में। जहाँ बाढ़ आने की सम्भावना होती है वहाँ यह अपना घर ज़रा ऊँची ज़मीन पर बाँधता है। कभी-कभी इसका घोंसला मकान के छप्पर पर भी पाया जाता है। सम्भव है, वह कहीं किसी पेड़ पर भी मिल जाय, पर ज़मीन से बहुत उँचाई पर नहीं। ज़मीन पर तो थोड़ी-सी मिट्टी हटाकर और घास-फूस या पत्तियों को बिछाकर ही यह अपने घोंसले का इन्तज़ाम कर लेता है। हाँ, जब ऊपर रहना पड़ता है तब कुछ और सामान जुटाना और मचान बाँधना आवश्यक हो जाता है। अंडों की संख्या दो से छः तक होती है—बहुत कर चार या पाँच। डेवर साहब लिखते हैं कि कभी-कभी आठ अंडे भी पाये जाते हैं। अंडों का रंग सफ़ेद होता है हाथी-दाँत का-सा। अंडे सेने का काम अकेली मादा करती है। इसमें प्रायः एक महीना लगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh